श्रीलाड-औदीच्य-आमेटा

(जातीय इतिहास)



गिरिधारीलाल शास्त्री

श्रीलाड-औदीच्य-आमेटा
(जातीय इतिहास)

धार्मिक विधियों के विवरणों

से सन्तुलित

भाग १

सम्पादक —

गिरिधारीलाल, साहित्य-शास्त्री

प्रकाशक —

जगन्नाथ शास्त्री, काव्य-तीर्थ

वि० संवत् २००१



मूल्य १) एक रुपया

मुद्रक—
मैनेजर श्री दीनदयाल माथुर, बी० ए०,
नवलकिशोर प्रेस, अजमेर।



श्रीमान् पूज्यचरण

श्री १०८ श्री सवाई श्रीराघवानन्दजी महाराज,

श्रीएकलिंगधाम, मेवाड़ ।

विषय-सूची



श्री एकलिङ्गेश्वरो विजयते ।

समर्पणम्

श्रीमदद्वैतसिद्धान्तप्रतिष्ठापक-श्रीशङ्करभगवत्पूज्यपादशिष्य-श्रीविश्वरूपाचार्यप्रवर्तित-पश्चिमशारदापीठाम्नायानुगामि-श्रीमहर्षिहारीतराशिप्रतिष्ठापिताचार्यसिंहासनासीन-श्रीमदेकलिङ्गेश्वरभगवच्चरणनिरन्तरपरिचरण-समधिगतजीवन्मुक्ति साम्राज्यपदाभिषिक्त-श्रीमहाराणाविरुदोपबृंहितश्रीमन्मेदपाटमहीमहेन्द्रकुलगुरु, गोस्वामीजी श्री १०८ श्री सवाई श्रीराघवानन्दजी महाराज, श्रीएकलिङ्गधाम (मेवाड़), के पवित्र कर-कमलों में, श्रीचरणों के पूर्वाश्रम से सम्बन्ध रखनेवाला यह 'श्रीलाड-औदीच्य-आमेटा-समाज' अपने जातीय धार्मिक व्यवहार और इतिहास को प्रदर्शित करने वाले इस ग्रन्थ को श्रद्धा-भक्ति-पुरःसर समर्पित करता है। शिवम्।

वैशाख शुक्ला
१५ सं० २००१
विक्रम

विनीतः—
श्रीकृष्ण पाठक, अध्यक्ष श्रीलाड-औदीच्य-आमेटा-ब्राह्मण-समाज

श्रीमदेकलिङ्गधामगोस्वामिन

पूज्याः श्री ६ श्रीराघवानन्दचरणाः ।

सिद्धे कलिङ्गेश्वरदेवधाम्नि महर्षिहारीतकृतप्रतिष्ठे ।
पीठे भजन्त परमा प्रतिष्ठा श्रीराघवेन्द्रा गुरवो जयन्ति ॥१॥

श्रीमेदपाटीयमहीमहेन्द्रा पीठप्रभावोर्जितभक्तिभावा ।
एभ्यो निवेद्याखिलवैभवानि प्रसादरूपेण समश्नुवन्ति ॥२॥

एषा शुभाशीर्वचनेषु शुम्भन्ननुग्रह साम्बसदाशिवस्य ।
श्रीमेदपाटेन्द्रकुले समस्तान् कामान् सदा वर्षति निर्विलम्बम् ॥३॥

प्रत्यक्परामेदपरानुसन्धासमुद्यदानन्दसमुद्रमग्ना ।
सप्रत्ययमी मुक्तिपदे भजन्ते कृतार्थभावस्य निदर्शनत्वम् ॥४॥

नाना नरेन्द्रा निजशीर्षशुम्भत्कोटीरहीरै परयानुरक्त्या ।
पादाम्बुजातद्वितयीममीषा नीराजयन्त सतत स्पृशन्ति ॥५॥

दूरामिमे ससृतिमीमभूमेर्मुक्तेरवस्थामपि निर्विशन्त ।
सस्थानसम्बन्धवशात् प्रसक्ता क्रिया समस्ता इह निर्वहन्ति ॥६॥

वय स्पृशत् सततिमङ्गयष्टि कृशा भृश भोजनयन्त्रण च ।
महेशसेवापरता तथापि वृद्धि यती वर्धयतीह चित्रम् ॥७॥

सासिद्धिकै स्वातिशयप्रकाशैर्लाभे पुन सर्वविधानुभूते ।
एषा दुरूहेष्वपि विस्फुरन्ती मतिस्तल पश्यति तूर्णमेव ॥८॥

सस्थान-सस्थान् निखिलान् विभागात् श्लोकयो विलोक्याक्रियत प्रबन्ध ।

प्रभोः सपर्यास्वखिलासु येन नियुक्तिमन्तः सुविधां लभन्ते ॥९॥
प्राचां गुरूणां महता व्ययेन निर्माप्य चैत्यायतनानि भक्त्या ।
एतत्प्रतिष्ठाक्रियया सहैव स्वकीयकीर्तेरपि सा व्यधायि ॥१०॥
द्विजोपवीतोपयमादिकार्येष्वनेकशः स्वीय उदारभावः ।
प्रादर्शि यः श्रीचरणैः स एव आदर्शतां दर्शयतीह लोके ॥११॥
जलाशयाः सन्ति समस्तजीवजातस्य जीवातव इत्यवेत्य ।
फलाभिसन्धेर्विरहेऽपि चक्रे वापी महापुष्करिणी च नव्या ॥१२॥
पौरस्त्यपाश्चात्त्यमतान्यनेकान्यालोक्य सारेण समुद्धृतेन ।
चक्रे गुरुैः पाशुपतैः पवित्रः प्रत्नेतिवृत्तैः कलितो निबन्धः ॥१३॥
विमर्शशैलीं विमलां यदीयां प्रौढिं परां वर्ण्यगतां च वीक्ष्य ।
बुधा महान्तोऽपि निजाङ्गुलिं द्राग् दन्तान्तराले विनिवेशयन्ति ॥१४॥
स्पृहणीयगुणैर्व्वधां पद्यपुष्पमयीं स्रजम् ।
गोस्वामिराघवेन्द्रेभ्यो जगन्नाथः समार्पिपत् ॥ १५ ॥



श्रीगिरिधारीलालजी शास्त्री. उदयपुर (मेवाड़)

वर्षे व्योमशशाङ्क-भू-परिमिते, मासे मधौ, श्यामले
पक्षे, विश्वतिथौ, रवौ, बुध-कविस्पृष्टे घटस्योदये ।
नाना-नव्य-निबन्ध-निर्मितिकरः प्रत्नेतिवृत्ताकरः
साहित्योदधि-मन्दरो गिरिधरः शास्त्री जनिं लब्धवान् ॥

सम्पादक का वक्तव्य

आज मैं जिस वस्तु के विषय में पाठकों के समक्ष कुछ निवेदन करना चाहता हूँ, इसका बीजारोपण अनुमानत आज से २५ वर्ष पूर्व हुआ था। मेरे मित्र प० जगन्नाथजी शास्त्री काव्यतीर्थ के साथ बातचीत करते हुए एक दिन यह विचार हुआ कि अपनी जाति के वसिष्ठगोत्रीय अपने ५ प्रवर बताते हैं, परन्तु इस गोत्र के ५ प्रवरों का उल्लेख शास्त्रों में कहीं नहीं है। ऐसे ही चन्द्रात्रेयगोत्रीय कुछ जाति-बन्धु अपने गोत्र का नाम चान्द्रायण कहते हैं, परन्तु चन्द्रात्रेय और चान्द्रायण ये दोनों शब्द परस्पर के परिवर्तित रूप नहीं हैं। अतएव इनका निर्णय होना आवश्यक है। इस निश्चय के अनुसार गोत्र प्रवर-विषय के निर्णय सिन्धु, धर्म सिन्धु, प्रवर मञ्जरी, प्रवर दर्पण, बौधायन सूत्र, मत्स्य-पुराण, आश्वलायन प्रवर-काण्ड, आपस्तम्ब प्रवर काण्ड, अभिनव माधवीय आदि अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों का अवलोकन किया। औदीच्य, भट्ट मेवाड़ा, नागर, श्रीमाली आदि कई ब्राह्मण जातियों के गोत्र प्रवर विवरण भी देखे। वसिष्ठगोत्रीय अनेक ब्राह्मणों से प्रवर भी पूछे। परन्तु फलस्वरूप इतना ही निर्णय हुआ कि जिनके प्रवर ५ हैं वे वसिष्ठ गोत्रीय नहीं, वत्सगोत्रीय हैं और जो चान्द्रायण शंकरजी व्यास के वंशधर हैं, एवं जिनके यहां कुलदेवी के साथ सती के हाथ की पूजा होती है, उनका गोत्र कड़िया के शिलालेख के अनुसार चन्द्रात्रेय ही हो सकता है, चान्द्रायण नहीं। परन्तु फिर भी जाति बन्धुओं की दिलचस्पी नहीं होने से पूर्ण निर्णय नहीं हो सका। इन गोत्र-प्रवर विषयक विचारों के उदय समय से ही जातीय इतिहास के संग्रह का कार्य मैंने आरम्भ किया था, परन्तु कुछ जाति बन्धुओं की विरुद्ध भावना से और कुछ की उदासीनता से अनेक कष्ट उठाते हुए भी यह कार्य आजतक पूर्णता को नहीं पहुँचा। फिर

भी 'अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः' इस न्याय के अनुसार 'न होने से कुछ होना ठीक है' यह समझ कर जैसा भी कुछ बना पाठकों की सेवा में उपस्थित किया गया है।

विक्रम-संवत् १९९९ के वैशाख में गांव कुरावड़ (मेवाड़) के आमेटा-पंचों ने मन्दिर बनवा कर उसमें भगवान् श्रीमहाविष्णु की प्रतिष्ठा की, एवं प्रतिष्ठा के अवसर पर जाति-सम्मेलन किया। इसमें सम्मिलित होने के लिये मैं कुरावड़ गया और प्रतापगढ़ से शास्त्री जगन्नाथजी भी आये। शास्त्रीजी ने जाति-बन्धुओं के सामने इस 'इतिहास' को मुद्रित कराने के लिये जोरदार अपील की, जिससे प्रभावित होकर उपस्थित जाति-बन्धुओं ने चन्दे के लिये उदारता प्रदर्शित करना आरम्भ कर दिया। फलस्वरूप कुछ रकम तो उसी समय एकत्रित होगई थी और शेष बाद में संगृहीत हुई जिसका उपयोग इसके प्रकाशन में हुआ है।

ग्रन्थ-प्रकाशन निश्चित होने के अनन्तर कुछ जाति-बन्धुओं ने और भी उपयोगी ऐतिहासिक अंश उपलब्ध होने की आशा दिलाई है। इस कारण से प्रस्तुत इतिहास को दो भागों में विभक्त कर प्रकाशित करने का निश्चय किया है। अभी यह प्रथम भाग पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। जो विषय अब तक अपूर्ण हैं और जिनका परिचय आगे उपलब्ध होनेवाला है उनका उचित रूप में प्रकाशन प्रस्तुत इतिहास के द्वितीय भाग में किया जायगा।

जातिबन्धुओं के धार्मिक आचारों में कहीं कमी और कहीं विपरीतभाव दृष्टिगोचर होता है। इनको दूर करने की सद्-भावना से प्रस्तुत इतिहास में कुछ धार्मिक कार्यों के निर्णय और विधियों का भी सन्निवेश किया गया है जिनमें से कुछ प्रथम भाग में और शेष द्वितीय भाग में प्रकाशित होंगे।

जिस परमात्मा के निर्हेतुक अनुग्रह से मुझे अपने परिश्रम को फलित रूप में देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उसके चरणों में श्रद्धापुर सर अनेकश धन्यवाद अर्पण करता हूँ एव सहयोग देने वाले सज्जनों के उपकार का भी स्मरण करता हूँ। साथ ही उनका भी उपकार मानता हूँ, जिन्होंने बाधक होकर भी मुझे सावधान रहने का उपदेश दिया है। शिवम्।

उदयपुर (मेवाड़)
अक्षयतृतीया,
सवत् २००१ वि०

सपादक—
प॰ गिरिधारीलाल,
साहित्य-शास्त्री



श्रीजगन्नाथजी शास्त्री, जोशी, काव्यतीर्थ
प्रतापगढ़ (मेवाड़)

जन्मतिथि वि० सं० १९५४ भाद्रशुक्ला ११ भौमवासर

साहित्योद्यानसारग्रहणमधुकरः शब्दविद्यासरस्व-
त्पारीणो धर्ममर्मागमविमलहृद् दर्शनादर्शभूत. ।
स्वर्भाषागद्यपद्यप्रणयननिपुणः कॉठलेन्द्रप्रतीक्ष्य-
प्रेक्षावत्कृष्णलालात्मज इह लसति श्रीजगन्नाथशास्त्री ॥

प्रकाशक का वक्तव्य

परमेश्वर की कृपा का फलस्वरूप यह 'श्रीलाड औदीच्य आमेटा' जाति का इतिहास पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जा रहा है। इसमें प्राचीन घटनाओं का सन्निवेश रावजी की पुस्तक (जातीय ख्यात) और प्रचीन दन्त-कथाओं के आधार पर हुआ है। इतिहास के सच्चे साधन या तत्कालीन विद्वानों के द्वारा लिखे गये सच्चे क्रमबद्ध विवरण तो बड़े-बड़े राज्यों को भी उपलब्ध नहीं हुए हैं। फिर इस गरीब ब्राह्मण-जाति को कैसे मिल सकते हैं। जातीय इतिहासों के अब तक कई ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। प० ज्वालाप्रसादजी कृत जातीय इतिहास, पं० छोटूलालजी फुलेरा कृत जाति निर्णय, ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड, औदीच्य-प्रकाश, श्रीस्थलप्रकाश आदि, परन्तु इनमें से किसी एक में भी आमेटा जाति का नाम नहीं है। अकारादि क्रम से जो हिन्दी में कोष बने हैं उनमें भी आमेटा शब्द नहीं है। मारवाड़ की जो मर्दुम-शुमारी की रिपोर्ट छपी है, एक दिन प्रसङ्गवश उसे देखी तो उस में भी 'आमेटा' नाम की कोई जाति नहीं बताई गई। २० वीं शताब्दी से पूर्वका एक भी ऐसा मुद्रित ग्रन्थ नहीं, जिसे किसी आमेटा ब्राह्मण ने बनाया हो या प्रकाशित किया हो। देवलिया प्रतापगढ़ के गौतमीय भट्टों के अतिरिक्त इस जाति में एक भी ऐसा प्राचीन वंश मालूम नहीं हुआ, जिसके पास उस वंश के प्राचीन पुरुषों के बनाये हुए या लिखे हुए दो चार भी प्रसिद्ध ग्रन्थ हों। अब पाठक विचार करें कि ऐसी जाति का यदि कोई इतिहास लिखने बैठे तो क्या लिख सकता है। एक आपत्ति यह भी है कि जाति-बन्धुओं में इतिहास-

प्रेम का महान् दुर्भिक्ष है। जाति के १४०० घरों में से एक पुरुष ने यह प्रयास किया है। ऐसी दशा में योग्य इतिहास का न बनना निसर्गसिद्ध है। अब तक के अन्वेषण से यह मालूम नहीं हुआ कि इस जाति का विवरण पुराण, उप-पुराण या किसी संहिताग्रन्थ में है। नागर, औदीच्य, आमेटा आदि जातियां बहुत पीछे कल्पित हुई हैं। पुराणों में वर्तमान इनका विवरण प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। राव बडवाओं की पुस्तकों में भी प्रामाणिक अंश कम है। उनसे इस जाति के इतिहास में अच्छी सहायता नहीं मिली है। अतएव प्रस्तुत ग्रन्थ में ग्रामवार जातीय घर, उनके गोत्र और पठितों का परिचय इतने अंश के उल्लेख से ही संतोष करना पड़ा है।

जाति के ४ मण्डलों में से मेवाड़ और मारवाड़ मण्डल से इतिहास की सामग्री योग्य मात्रा में उपलब्ध हुई है। इससे कुछ कम झालावाड़-मण्डल से और मालवा-मंडल से (शुजालपुर-प्रान्त से) सब से कम उपलब्ध हुई है। रुपये ४) के लिफाफे और कार्ड केवल शुजालपुर-मंडल का इतिवृत्त मालूम करने के लिए खर्च किये गये हैं। मंडल के अभिज्ञों ने इतिवृत्त भेजना स्वीकार किया और हमने १ वर्ष तक प्रतीक्षा भी की, परन्तु इतिवृत्त पूरा मिला नहीं। कारण तो सर्वज्ञ को मालूम। मेवाड़-मंडल बहुत बड़ा है। इसके अन्तर्मंडल १३ या १४ हैं। इन में भी प्रत्येक के मुखिया हैं, परन्तु उनके ग्रन्थों में लिखने योग्य विशिष्ट परिचय मिले नहीं, इसलिये उल्लेख नहीं कर सके। जाति बन्धुओं को, अपनी जाति में विद्यमान संस्कृत इंग्लिश के योग्य पण्डितों की संख्या, मालूम कराने के लिये कुछ प्रयत्न

किया है। इसमें प० लक्ष्मीलालजी व्यास उदयपुर, प० रंगलालजी व्यास उदयपुर, प० रंगलालजी भट्ट निम्बाहेड़ा एवं पण्डित जवाहिरचन्द्रजी चान्द्रायण के सुपुत्र पण्डित लक्ष्मीनारायणजी बी० ए०, एल् एल् बी०, छिन्दवाड़ा (शुजालपुर प्रान्त) का विशिष्ट वंश-परिचय प्रकरण में परिचय देना रह गया है। ऐसे ही और भी विद्वानों का परिचय अवशिष्ट रह गया होगा। इसमें इतिवृत्त उपलब्ध न होना और भूल दोनों कारण हैं। मारवाड़-मंडल के अतिरिक्त शेष मंडलों के माफीदारों ने भूमिदान मिलने का विवरण सप्रमाण और विस्तृत नहीं भेजा। अतएव अनुरूप उल्लेख नहीं हो सका। लोहारिया के प० वृद्धिशंकरजी ज्योतिषी ने अपने वंश का विवरण देर से भेजा इसलिये प्रकाशित नहीं कर सके।

मेरे मित्र पं० गिरिधारीलालजी साहित्य शास्त्री, जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक का निर्माण और संपादन किया है, मेवाड़-मंडल के परीक्षोत्तीर्ण संस्कृत पण्डितों में सर्वप्रथम हैं। आप उद्योगी धर्मनिष्ठ एवं साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। आपने कई ग्रन्थों का निर्माण और प्रकाशन किया है। आपने प्रस्तुत ग्रन्थ की पाण्डुलिपि जातीय कलह-मूलक अशान्ति के कारण मुझे प्रदान कर दी थी जिसे मैंने पीछे से उपलब्ध हुए ऐतिहासिक साधनों के आधार पर संशोधन और परिवर्धनों से परिवर्तित कर प्रकाशित की है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कुछ विषय विवादग्रस्त हैं, जिनका उत्तम निर्णय, संभव है, कोई परवर्ती भाग्यशाली विद्वान् लिख सकें। इन विवादग्रस्तों में से ३ विषय प्रधान हैं—

१ आमेटा जाति औदीच्यों में से निकली हुई है या लाटदेशवासिनी पृथक् ब्राह्मण जाति है ?

२ आमेटों में चान्द्रायण और चन्द्रात्रेय ये दोनों पृथक् पृथक् गोत्र हैं या एक ही गोत्र के दोनों नाम हैं ?

३ वत्स गोत्र के समान मेवाड़ में वसिष्ठ गोत्र वाले अपने प्रवर ५ बताते हैं तो क्या इनके प्रवरों में भूल है या गोत्र में ?

इन विषयों में मेरा और संपादकजी का कुछ मतभेद है, जिसे मैं यहां प्रदर्शित कर देना उचित समझता हूँ—

१ संपादकमतः—आमेटा जाति औदीच्यों में से निकली है, इसके मुखिया महात्मा श्रीलाड थे जो इस जाति के पूर्व-पुरुषों को गुजरात से लेकर आये और मेवाड़ के आमेट गांव में आकर बसे। आमेट गांव में बसने के कारण आमेटा कहलाये।

१ प्रकाशकमतः—डाकोर के पास का उमरेठ गांव लाट देश के अन्तर्गत है, इस लाट देश के उमरेठ गांव में रहने के कारण यह जाति श्रीलाड-उमरेठा कहलाने लगी। लाड ब्राह्मण और लाड वैश्य अभी गुजरात में हैं। जाति के नाम में वर्तमान 'लाड' शब्द की उपपत्ति के लिये श्रीलाड ऋषि की कथा भाटों ने कल्पित की है। औदीच्यों की प्रारम्भिक स्थिति में यह जाति औदीच्यों से पृथक् हुई हो यह संभव है।

२ संपादकमतः—चान्द्रायण और चन्द्रात्रेय दो गोत्र नहीं है, एक ही है और गोत्र का यथार्थ नाम चन्द्रात्रेय है, क्योंकि त्रिलोचन भट्ट के शिलालेख में इसका उल्लेख है।

२ प्रकाशकमत—त्रिलोचन भट्ट के शिलोलेख में कर्णपुर वालों के पूर्वपुरुषों का गोत्र चन्द्रात्रेय लिखा है, परन्तु जाति में वर्तमान सभी चन्द्रात्रेय और चान्द्रायण कर्णपुर वालों के वंशज या भाई-बन्धु नहीं है। शंकरजी के १२ बेटों की कथा पूर्ण विश्वास करने योग्य नहीं है। १२ लड़के हों, सभी जीवित रहें, सभी को जागीरें मिलें यह कम संभव है। जागीरों के ताम्रपत्र भी भिन्न २ समय के हैं। मारवाड़ के चान्द्रायणों के कुलाचार मेवाड़ के चन्द्रात्रेयों से मिलते हुए नहीं है। मालवा के चान्द्रायण भट्ट भी सामवेद की कौथुमी शाखा के पढने वाले हैं। इन सबको कर्णपुर वालों के वंशधर नहीं कह सकते। अतएव इनका गोत्र पृथक् हो सकता है। यदि चान्द्रायण गोत्र है ही नहीं तो यह चान्द्रायण शब्द कहां से आया? यह चन्द्रात्रेय का बिगड़ा या सुधरा हुआ रूप नहीं है इतना तो स्पष्ट है।

३ सपादकमत—आचार्य अवटंक वालों का गोत्र वसिष्ठ है, वत्स नहीं। वसिष्ठ गोत्र के प्रवर ३ हैं, इसलिये आचार्यों को ३ प्रवर मानने चाहिये।

३ प्रकाशकमत—जैसे एक ही जोशी अवटंक कश्यप, चन्द्रात्रेय, वत्स आदि कई गोत्रों में है, इसी प्रकार आचार्य अवटंक का भी वसिष्ठ और वत्स दोनों गोत्रों में रहना अनुचित नहीं है। जिनके ५ प्रवर हों वे अपना गोत्र वत्स मानें और जिनके ३ प्रवर हों वे अपना गोत्र वसिष्ठ मानें। वत्स शब्द बिगड़ कर वतस, वटस, वसट, वसिष्ठ आदि कई शकलों में बदल सकता है, परन्तु प्रवर की गांठों में भूल होना संभव नहीं है। सरदारगढ़, ख्यावलास और डुरड़ा इन तीनों गावों में केवल ५ प्रवर वाले आचार्य ही हैं।

अखण्ड गांव प्रवरों की गांठे भूल जावें यह असंभव है। वसिष्ठ गोत्रीय आचार्य झालावाड़ मंडल के सोयली, कुलमी-खेड़ा, खोजाखेड़ी आदि गांवों में हैं, क्योंकि इनके प्रवर ३ हैं।

इन तीन विषयों के अतिरिक्त और सभी विषयों में मेरा और संपादकजी का ऐकमत्य है।

आकोदिया मंडी के पं० रामचरणजी द्वारकाप्रसादजी ने जो सभा में निश्चित कर जातीय विवरण भेजा उसमें गोत्र का नाम चान्द्रायण लिखा था और वनेड़ा वाले हरिरामाचार्यजी से पूछा तो उन्होंने भी मारवाड़ में चान्द्रायण गोत्र का होना स्वीकार किया। तदनुसार इन दोनों प्रान्तों के गोत्र-प्रवरों के नक्शों में गोत्र का नाम चान्द्रायण लिखा है। मेवाड़ और झालावाड़ के चन्द्रात्रेयों के कुलाचार परस्पर मिलते हैं, इसलिये इनके नक्शों में गोत्र का नाम चन्द्रात्रेय लिखा है। यह 'स्थितस्य गतिः समर्थनीया' है। अच्छा निर्णय आगे होगा।

जोधपुर के वैद्य पं० जसराजजी आमेटा ने जोधपुर, जैसलमेर, वीसलपुर, मेड़ता आदि में उपमन्यु और लोमन्यस् (लोनस्) इन दो गोत्रों के होने का उल्लेख और किया है, परन्तु वैद्यराजजी ने विशेष विवरण लिखकर पूर्ण संतोष नहीं कराया, इसलिये नक्शों में इनको स्थान नहीं दिया है।

राव वडवाओं ने द्वेषवश या अज्ञानवश कुछ गोत्रों के नाम निकाल दिये और कुछ का मिश्रण कर दिया है ऐसा मालूम होता है। फिर भी जिनकी श्रद्धा १३ संख्या पर

हो वे वैसा ही मानते रहें। विना कारण वर्तमान वस्तु का अपलाप कैसे होगा।

जाति के स्वरूप के सरक्षक धर्म के निर्णयों का और विधियों का भी इसमें सन्निवेश किया गया है। भूल इतनी हुई कि धार्मिक और ऐतिहासिक अंशों को पृथक २ नहीं कर सके। उपनयन और विवाह की विधिया हरिरामाचार्यजी, बनेड़ा की प्रेरणा से मारवाड़ प्रान्त के उपयोग के लिये पूरी २ दी गई हैं, जिनके लिये इनका उपयोग नहीं है वे इनके विस्तार से अरुचि अवश्य करेंगे।

जातीय धार्मिक विधियों के लिये उपयोग में आने वाले दत्तकनिर्णय, आशौचनिर्णय, मासिकधर्म विचार, और्ध्व दैहिक और और्ध्वदैहिक के अधिकारी, आशौच का आना आदि कई विषयों के निर्णय सपादकजी ने लिखे हैं, जिनमें प्रसङ्गवश आमेटा जाति में प्रविष्ट हुई कुरीतियों का दिग्दर्शन और उनके निवारण का उपदेश भी दिया है। परन्तु खेद है कि आर्थिक स्थिति ठीक न होने से हम इसे प्रकाशित नहीं कर सके हैं। यदि पाठक हमारे वर्तमान परिश्रम का आदर करेंगे तो हम अवश्य ही जो ऐतिहासिक अश (अन्तर्मण्डलों का विशेष परिचय ग्रामवार नामावली आदि) शेष रह गया है और जो भी जाति बन्धुओं की कृपा से अब आगे उपलब्ध होने वाला है, उसके साथ इसे द्वितीय भाग के रूप में प्रकाशित कर देंगे।

हमने प्रस्तुत कार्य में समदृष्टि से व्यवहार किया है, जिन्होंने हमें चन्दा या किसी प्रकार की सहायता दी उनके एव जो प्रतिकूल थे और सहायता नहीं की उनके

विवरण लिखने में किसी प्रकार का अन्तर नहीं रक्खा है। वस्तुस्थिति जैसी है वैसी बताई है। फिर भी इसमें किसी की अप्रतिष्ठा हो या मर्मोद्घाटन हो ऐसा कोई कार्य नहीं किया गया है। भूल मनुष्य मात्र से होती है, जिसके अपवाद हम भी नहीं है, इसके लिये निम्नलिखित प्रार्थना है—

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या लेखमुद्रणकर्मसु।
न्यूनं निर्दोषतां याति वन्दये तं स्मृतिक्षयम्॥
प्रमादात्कुर्वतां कर्म च्यवेताध्वरेषु यत्।
क्षमया याचनादेव संपूर्णं स्यादिति स्थितिः॥

प्रतापगढ़ (राजपूताना) }
वैशाखी १५, सं० २००१ }

वशंवदः—
जगन्नाथ शास्त्री जोशी



माननीय पं० श्रीकृष्णजी साहब, पाठक
सर्वप्रधान, आमेटा-समाज, उदयपुर (मेवाड़)

श्री ।

आभार-स्वीकार ।



श्रीमान् पूज्यचरण श्री १०८ श्री सवाई श्रीराघवानन्दजी महाराज, श्रीएकलिंगधाम, मेवाड़ ।

प्रस्तुत इतिहास के पूर्ण होने में श्रीचरणों का मंगलमय शुभाशीर्वाद ही प्रधान कारण है। साथ ही इस कार्य के निमित्त श्रीचरणों ने एक बड़ी रकम प्रदान करने का भी अनुग्रह किया है। एतदर्थ अनेकशः धन्यवाद अर्पण करते हुए श्रद्धा से नतमस्तक होकर श्रीचरणों का आभार स्वीकार किया जाता है।

श्रीमान् पूज्य श्रीहरिरामाचार्यजी महाराज, महन्त श्रीराम मन्दिर, ठिकाना बनेड़ा (मेवाड़)।

आप श्रीरामानुजसम्प्रदायीय वैष्णव हैं एवं लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान् हैं। आप के कई भाग्यवान् शिष्य हैं। आपका वंश मारवाड़ के आमेटा-मंडल में प्रमुख है। मारवाड़-मंडल का संपूर्ण सजातीय-विवरण आपने भेजा है। आपने मारवाड़-मंडल की ओर से द्रव्य की सहायता दिलाने में भी पर्याप्त प्रयत्न किया है। आपकी इस कृपा का हार्दिक अभिनन्दन किया जाता है।

श्रीमान् प० पुरुषोत्तमजी चतुर्वेदी, साहित्याचार्य, धर्मोपदेशक तथा संस्कृत प्रोफेसर, मेयोकालेज, अजमेर।

आप संस्कृत हिन्दी दोनों के प्रौढ़ विद्वान् हैं एवं अद्भुत प्रतिभाशाली हैं। आपने कई ग्रन्थों का संपादन किया है।

भाई साहब बद्रीलालजी अठानाका चन्दा-संग्रह के आरम्भिक समय का प्रोत्साहन भी स्मरणीय है। मेरे शिष्य पं० कृष्णलालजी ज्यौतिषाचार्य का सहयोग भी भुलाया नहीं जा सकता।

अन्त में झालावाड़, मेवाड़, मालवा (शुजालपुर प्रान्त), वागड़, कांठल और मारवाड़ इन प्रान्तों में से उत्तरोत्तर ने आर्थिक सहायता में विशेष उदारता प्रदर्शित की है, अतः सहायता के अनुरूप इनका आभार स्वीकार किया जाता है।

निवेदयिता
जगन्नाथ शास्त्री, जोशी।
(प्रकाशक)





पं० रेवाशङ्करजी

ताजीमी पुरोहित, प्रतापगढ़ स्टेट, प्रमुख-ग्रामेत्रा-समाज

* श्रीहरि *

आमेटा-जाति का इतिहास



❀ ब्राह्मण-महिमा ❀

"यतोऽभ्युदयनि श्रेयससिद्धि स धर्म" (वैशेषिक दर्शन) ।

जिससे इस लोक में अभ्युदय और परलोक में मोक्ष की प्राप्ति हो वही धर्म है। धर्म के आचरण से इस लोक में शरीर स्वस्थ रहता है, मन शुद्ध होता है बुद्धि निर्मल होती है, घर धन-धान्य से परिपूर्ण होता है और यश मिलता है तथा परलोक में उस परब्रह्म में लीन होकर संसार के संकटों से सदा के लिये मुक्ति पा जाता है।

ऋषियों ने उस धर्म के दो विभाग किये हैं। (१) वर्ण-धर्म और (२) आश्रमधर्म। इनमें एक दूसरे के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण लोग इनको एक साथ 'वर्णाश्रम धर्म' ही कह दिया करते हैं। अनेक आपत्तियों को, अनेक विदेशी तथा विधर्मी आक्रमणों को सहन करके भी जो यह आर्य हिन्दू जाति आज जीवित है, यह एक वर्णाश्रम धर्म का ही प्रताप है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि वर्णाश्रमधर्म की रक्षा हिन्दूजाति की रक्षा है और इसका नाश हिन्दू जाति का ही नाश है।

आश्रमधर्म का मूल वर्णधर्म है। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि—"चातुर्वर्ण्यंमया सृष्टं गुणकर्मविभागशः" गीत ।।

अर्थात् गुण और कर्म के विभाग से चारों वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—मेरे द्वारा ही बनाये गये हैं। भारत के त्रिकालज्ञ महर्षियों ने इस सत्य का प्रत्यक्षरूप से अनुभव किया। कारण, समाजकी सुव्यवस्था के लिये मनुष्यों के चार विभाग की सभी देशों में और सभी कालों में आवश्यकता हुई है, होती है, और होती रहेगी। परन्तु इसको सुव्यवस्थितरूप केवल भारतवर्ष ने ही दिया है।

समाज में धर्मकी स्थापना और रक्षा के लिये, समाज-जीवन को सुखी बनाये रखने के लिये समाज की जीवन-पद्धति में उपस्थित हुई बाधाओं को दूर करने के लिये, कर्म-बन्धन के प्रवाह को रोकने के लिये और धर्मसंकट में समुचित व्यवस्था देने के लिये परिष्कृत और निर्मल मस्तिष्क की आवश्यकता होती है। धर्म की और धर्म में स्थित समाज की रक्षा के लिये बाहुबल की आवश्यकता है। मस्तिष्क और बाहु का यथायोग्य रीति से पोषण करने के लिये धन और अन्न की आवश्यकता है और कर्मों को कराने के लिये शारीरिक परिश्रम की आवश्यकता है। इसीलिये मनुष्य-समाजरूप शरीर का मस्तिष्क ब्राह्मण है, बाहु क्षत्रिय है, पेट वैश्य है और पैर शूद्र है। ये चारों आवश्यक अंग हैं। इनके बिना समाज जीवित नहीं रह सकता। इनमें न कोई छोटा है, न कोई बड़ा। ब्राह्मण ज्ञान बल से, क्षत्रिय बाहुबल से, वैश्य धनबल से और शूद्र सेवाबल से बड़ा है। इन चारों वर्णों की उत्पत्ति भगवान् के शरीर से मानी गई है।

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य कृत ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्य पद्भ्या शूद्रो अजायत" ॥ (यजुर्वेद)

अर्थात् भगवान् के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जघाओं से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं।

ऋषि-सेवित वर्ण-धर्म में ब्राह्मण का पद सब से ऊंचा है, क्योंकि वह समाज के धर्म का निर्माता है, गुरु है और मार्गदर्शक है। परन्तु वह न तो धनसग्रह करता है, न दण्ड ही देता है और न भोगविलास में ही रुचि रखता है। धन, ऐश्वर्य और पदगौरव की लालसा को तिलाजलि देकर वह केवल फलमूलों पर निर्वाह करता हुआ सपरिवार नगर से दूर वन में रहता है। दिन-रात वह तपस्या, धर्मसाधन, और ज्ञानार्जन में लगा रहता है और उस ज्ञान की दिव्य ज्योति को समाज में वितरण करता है। इसके बदले में वह कुछ चाहता नहीं है। समाज अपनी इच्छा से जो कुछ दे देता है अथवा भिक्षा के रूप में जो कुछ मिल जाता है, उसी से वह अपनी जीवनयात्रा करता है। उसके जीवन का यही आदर्श है। इसीलिये शास्त्रों में ब्राह्मणों की बड़ी महिमा गाई गई है। मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में मनु महाराज का कहना है कि —

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद् ब्रह्मणश्चैव धारणात् ।
सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मण प्रभु ॥९३॥

परमात्मा के सब अगों में उत्तम अग मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ है, सब से पहले जन्मा है और वेद को धारण करता है, इसलिये धर्म का अनुशासन करने में ब्राह्मण सब सृष्टि का प्रभु है।

उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती ।
स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ९८ ॥

ब्राह्मण के शरीर की उत्पत्ति ही धर्म की मूर्तिमान् अवस्था है। वह धर्म का आचरण करने और मोक्ष की प्राप्ति करने के लिये ही उत्पन्न हुआ है।

महाराज पृथु कहते हैं किः—

यत्सेवयाऽशेषगुहाशयः स्वराट् विप्रप्रियस्तुष्यति काममीश्वरः।
तदेव तद्धर्मपरैर्विनीतैः सर्वात्मना ब्रह्मकुलं निषेव्यताम् ॥३८॥
(श्रीमद्भागवत स्कं० ४, अ० २१)

जिन ब्राह्मणों की सेवा से ब्राह्मणों के प्रिय सर्वान्तर्यामी सन्तुष्ट होते हैं, भागवतधर्म-परायण तुम भी नम्रतापूर्वक शरीर, मन और वाणी से उन ब्राह्मणों के कुलकी सेवा करो।

न स जातोऽजनिष्यद्वा पृथिव्यामिह कश्चन ।
यो ब्राह्मणविरोधेन सुखं जीवितुमुत्सहेत् ॥ २६ ॥
(महा० अनुशासन पर्व अ० ३३)

इस पृथ्वी पर ऐसा कोई पुरुष न तो उत्पन्न हुआ ही है और न होगा ही, जो ब्राह्मण से विरोध करके सुखी रहने का उत्साह कर सके।

ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ।
कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानन्तसुखाय च ॥४२॥
(भाग० स्कंध० ११ अध्या० १७)

यह ब्राह्मणशरीर तुच्छ विषयभोग के लिये नहीं है यह तो जीवन भर कठिन तपस्या और अन्त में अनन्तसुखरूप मोक्षप्राप्ति के लिये है।

ब्राह्मणों के धर्म के विषय में गीता में लिखा है कि —

"शमो दमस्तप शौच क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञान विज्ञानमास्तिक्य ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥४२॥"
(गीता अ० १८)

शम (मन को वश में रखना), दम (इन्द्रियों को वश में रखना), तपस्या, शुद्धता, सन्तोष, क्षमा, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकबुद्धि ये ब्राह्मण के स्वभाविक कर्म हैं।

महाभारत में लिखा है कि ब्राह्मणों के सोलह संस्कार होने चाहिये। स्नान, सन्ध्यावन्दन, वेदाध्ययन, जप, हवन, देवपूजा और अतिथिसत्कार ब्राह्मण को प्रतिदिन करना चाहिये आदि।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में लिखा है कि यदि कोई ब्राह्मण मोहवश सन्ध्या नहीं करे तो उसकी पूजा को देवता तथा पितर नहीं ग्रहण करते हैं। इसलिये जब तक जीवित रहे बराबर सन्ध्या किया करे। प्रतिदिन गायत्री का जप करना चाहिये क्योंकि गायत्री ब्राह्मणों का जीवन है।

वेद पढना पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, और दान लेना-देना ये जो ब्राह्मणों के छ कर्म कहे गये हैं, उनमें वेद पढ़ना, यज्ञ करना और दान देना ये अपने कल्याण के लिये तथा वेद पढाना, यज्ञ कराना और दान लेना ये अपनी जीविका चलाने के लिये हैं।

"आ समुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्रात्त पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त विदुर्बुधाः ॥मनुस्मृति॥"

जिसके पूर्व तथा पश्चिम में समुद्र है और दक्षिण तथा उत्तर में (विन्ध्याचल और हिमालय) पर्वत हैं वही आर्यावर्त है।

इस आर्यावर्त का एक विभाग ब्रह्मर्षि देश नाम से प्रसिद्ध है। इस ब्रह्मर्षि देश में कुरुक्षेत्र नामक अतिपवित्र स्थान है। जहां कौरव पाण्डवों का महाभारत हुआ था और जिसको गीता में धर्मक्षेत्र कहा है। शतपथ ब्राह्मण नामक ग्रन्थ में लिखा है कि "कुरुक्षेत्रं वै देवानां देवयजनमास" १४।१।१।२ अर्थात् कुरुक्षेत्र ब्राह्मण देवताओं की यज्ञ-भूमि है। यहाँ ही "यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः" अर्थात् यज्ञ से उस यज्ञपुरुष भगवान् का ब्राह्मण देवताओं ने यजन किया। इन ऊपर लिखी बातों से प्रमाणित होता है कि ब्राह्मणों का उत्पत्ति-स्थान कुरुक्षेत्र है।

ब्राह्मणों के विभाग

सर्व प्रथम ब्राह्मणों में दो विभाग हुए और वे दिशाओं के नामों से पुकारे जाने लगे। आर्यावर्त के मध्य में बहने वाली सरस्वती नदी के पश्चिम-उत्तर में बसने वाला विभाग 'उदीच्य' और दक्षिण-पूर्व में बसने वाला विभाग 'प्राच्य' कहलाया। यह भेद जातिभेद नहीं था। यह तो केवल प्रान्त के नाम से परिचय दिया जाता था। इसमें परस्पर भोजन तथा कन्या व्यवहार बराबर था। धीरे-धीरे बढ़ता-बढ़ता यह समुदाय सभी दिशाओं में विस्तृत हो गया और भिन्न

भिन्न देशों के, प्रान्तों के और गावों के नाम से कान्यकुब्ज, सरयूपारीण, मैथिल, द्रविड, तैलग, पालीवाल, श्रीमाली आदि अनेक नामों से परिचय देने लगा। दूर-दूर रहने के कारण उनका परस्पर सम्बन्ध शिथिल हो गया और उनमें उत्तम मध्यम का भाव भी घर कर गया। इन ही बातों को ध्यान में रख कर तत्कालीन शङ्कराचार्यजी महाराज ने देशों के नामों के अनुसार ब्राह्मणों के दो भेद किये, जो द्रविड़ और गौड कहलाये। विन्ध्याचल के दक्षिण में रहनेवाले द्राविड़ और उत्तर में रहने वाले गौड़ नाम से प्रसिद्ध हुए। कालान्तर में इनमें भी स्थानों के नामानुसार प्रत्येक में पाच पाच भेद हो गये, जो पचद्रविड़ और पच गौड़ नाम से पुकारे जाने लगे। स्मरण रखना चाहिये कि ये भेद भी कल्पित ही हैं, वास्तविक नहीं। वास्तव में तो ब्राह्मणों के वेद शाखा, गोत्र, प्रवर, उपनाम, आचार, विचार, व्यवहार आदि देखते हुए स्पष्ट कहा जा सकता है कि किसी समय सभी ब्राह्मण एक थे और भोजन-कन्या-व्यवहार परस्पर में प्रचलित था। केवल प्रान्त तथा देश की परिस्थिति तथा वहाँ के निवासियों के ससर्ग से आचार-आदि में कुछ शिथिलता और परिवर्तन हो गया है जो थोड़े से परिश्रम से सुधारा जा सकता है।

पच गौड ये हैं—

"सारस्वता कान्यकुब्जा गौडा उत्कलमैथिला ।
पच गौडा समाख्याता विन्ध्यस्योत्तरवासिन ॥"

(१) सरस्वती नदी के समीप में रहने वाले सारस्वत। (२) कन्नौज के समीप रहने वाले कान्यकुब्ज। (३) गौड देश

उत्तर के निवासी ब्राह्मण इसके योग्य हैं, उनमें अभी विद्या का प्रचार है। राजा इस उपदेश को सुनकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ और ऐसे सत्पात्र ब्राह्मणों को बुलाने का उपाय सोचने लगा।

गुजरात में औदीच्यों का आगमन

गुजरात में प्राची सरस्वती नदी के तट पर सिद्धक्षेत्र है, जिसको आजकल सिद्धपुर कहते हैं। उसी पवित्र स्थान पर पाटण के राजा मूलराज ने एक विशाल और भव्य 'रुद्रमहालय' नामक श्रीमहादेव का मन्दिर बनवाया था। इसमें रुद्र अर्थात् ग्यारह मंजिलवाला मंडप था। प्रत्येक मंजिल में सौ खण्ड थे और प्रत्येक खण्ड में सौ-सौ शिवालय बने हुए थे। इस प्रकार इसमें सब मिलाकर एक सहस्र शिव-लिङ्ग स्थापित किये गये थे। नीचे का माल खाली था और प्रत्येक शिवलिङ्ग की परिक्रमा करने का स्थान था। संसार भर में ऐसा विशाल मन्दिर कदाचित् ही मिलेगा।

मूलराज ने मन्दिर की प्रतिष्ठा कराने के लिये और भूमिदान देने के लिये उत्तर दिशा से ब्राह्मणों को बुलाने का विचार किया। इस अवसर में तीर्थयात्रा, देवदर्शन करते हुए एक हजार सैंतीस ब्राह्मण सिद्धपुर की ओर आये। ये सब भिन्न २ स्थानों से चले थे। जिनका विवरण इस प्रकार है:—

१०० यजुर्वेदी काशीक्षेत्र से, १०० कुरुक्षेत्र से, २०० यजुर्वेदी कान्यकुब्ज से, १०० सरयूपार से, १०५ प्रयागराज से, १०० नैमिषारण्य से, १०० ऋग्वेदी गंगाद्वार से, १०० सामवेदी च्यवन के आश्रम से और १३२ पुष्करराज से।

मूलराज इनकी सूचना मिलते ही उनके पास पहुँचा और प्रार्थना करने लगा कि "ऋषिगण ! बहुत समय से मैं श्रीचरणों के दर्शनों की प्रतीक्षा में था। आज भगवान् ने उस मनोरथ को पूर्ण किया। सुना जाता है कि राज्य करने के समय अनेक अनुचित कर्म हो जाते हैं जिससे अन्त में राजा नरकगामी होता है। अब मेरी मृत्यु के दिन समीप आ पहुँचे हैं इसलिये प्रार्थना है कि सिद्धपुर में स्थित 'रुद्र-महालय' नामक शिवमन्दिर की आप विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करवाइये और शान्तिपूर्वक जीवन-यापन करने के लिये भूमिदान ग्रहण करने की दया कीजिये। यह श्रीस्थल-जैसा पवित्र तीर्थस्थान, कार्तिकमास-जैसा पवित्र समय और आप जैसेवेदपाठी ब्राह्मण-देवता देश, काल और पात्र इन तीनों का सुयोग मिल गया है।" यह सुनकर ब्राह्मण बोले "राजन्! हमलोग तीर्थयात्री हैं, हमको धन वैभव से क्या प्रयोजन। दूसरी बात यह है कि शुभ अशुभ अनेक प्रकार का अन्न-धन राज-कोष में आया करता है। इसलिये राज प्रतिग्रह लेना पाप है। तुम अपने घर जाओ, तुम्हारा कल्याण हो।"

राजा के अनेक अनुनय-विनय करने पर भी ब्राह्मणों ने कुछ ध्यान नहीं दिया। तब तो निराश होकर राजा अपने महलों में चला गया।

भगवान् की इच्छा प्रबल है। वह असम्भव को सम्भव और कठिन को सरल बना सकती है। एक दिन सभी ब्राह्मण दधीचि के आश्रम में पञ्चरात्र-तीर्थ यात्रा करने गये और अग्नि की रक्षा का भार अपनी पत्नियों पर छोड़ गये।

इस अवसर में लाभ उठाने की इच्छा से मूलराज ने अपनी महारानी को उन ब्राह्मणियों के पास भेजी और उसको भली प्रकार समझा दिया कि ब्राह्मण-पत्नियों को मिष्टान्न भोजन कराना, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र-आभूषण पहिनाना और दान लेने के लिये प्रार्थना करना।

महारानी शीघ्र ही उनके पास पहुँची और नम्रता-पूर्वक प्रार्थना करने लगी—"हे ऋषिपत्नियो! मैंने कार्तिक मास की शुक्लपक्ष की (देव-ऊठनी) एकादशी के दिन यह सब सामग्री श्रीभगवान् के अर्पण की है। अब उनकी इस प्रसादी को आप में बांट देना चाहती हूँ। जैसी इच्छा हो, कहें।" यह सुन-कर स्त्रियां ललचाईं और वस्तुएं लेना स्वीकार कर लिया। महारानी ने भी इच्छानुसार वस्तुएं देकर उनका व्यवहार उनको बता दिया। अन्त में उनसे आशीर्वाद लेकर रानी घर आई और उनसे निवेदन कर आई कि यदि आपने चाहा तो इनसे भी अधिक सुन्दर २ वस्तुएं आपके अर्पण की जाँयगी और निवास के लिये भूमि दे दी जायगी। राजा आपकी सावधानी से रक्षा करेंगे।

छठे दिन ऋषिगण यात्रा कर सकुशल स्थान को लौटे। वहां स्वर्गीय अप्सराओं के समान पत्नियों को देख कर ऋषियों को क्रोध हो आया और फटकारते हुए बोले—अरे! तुमने यह धर्म-विरुद्ध कार्य क्या किया, किसने तुमको प्रलो-भन देकर अपने व्रत से पतित कर दिया?

स्त्रियाँ बेचारी हाथ जोड़ कर कांपती हुई गद्गद् कण्ठ से कहने लगीं "पूज्यदेव! पाटण की महारानी देवोत्थापिनी एकादशी के दिन भगवान् के अर्पण कर यह सब सामग्री

हमको दे गई हैं। किसी ने हमको प्रलोभन देकर पातिव्रत-धर्म से विचलित नहीं किया है। आप किसी प्रकारकी शंका न करें।"

ब्राह्मण बोले—"अरे, यह चाल उस दुष्ट मूलराज की है। हमने जब दान लेने का निषेध किया तो उसने अवसर से इस प्रकार लाभ उठाया है। जब उसने छल से हमें सिद्धान्त से भ्रष्ट किया है, तो हम भी उसको शाप देकर राज्य से भ्रष्ट कर देते हैं।"

इस प्रकार ब्राह्मणों को आपे से बाहर होते देख कर स्त्रियों ने उग्रता धारण की और कहा—"ऋषियो! हमने तुम्हारे साथ विवाह कर कौनसा सुख भोगा है। आज इस वन में तो कल उस वन में, न रहने का ठिकाना है, न ओढने-बिछाने का और न खाने पीने का। देखा जाय तो कोई मनुष्य किसी मनुष्य का दास नहीं है, वह तो अपनी कामना का दास है। आप लम्बे २ अनुष्ठान करके दीर्घ काल तक ब्रह्मचर्य का पालन किया करते हैं और हम दीन की तरह अपना जीवन व्यतीत किया करती हैं। यदि आपको इसी प्रकार करना अभीष्ट था, तो फिर हमारा जीवन क्यों नष्ट किया। आप ईश्वरीय आनन्द तथा स्वर्गीय सुख के लोभ में पड़ेहुए हैं, परन्तु कभी यह नहीं सोचा कि हमारे ऊपर एक पितृ-ऋण का भी भार है। उसीसे मुक्त होने के लिये सन्तान उत्पन्न करने की कामना से विवाह किया जाता है। जरत्कारु नाम के एक ऋषि ने जीवन भर ब्रह्मचर्य पालन कर तपस्या करने का नियम कर लिया था। इससे उसके पितर लोग पिंडोदक के बिना भूखे प्यासे मरने लगे। पितरों ने उसको

शाप दिया कि जब तक तू विवाह करके सन्तान उत्पन्न न करेगा, तब तक तेरी तपस्या सफल नहीं होगी। इधर तपस्या सफल होते न देख कर जरत्कारु ने विद्वानों से पूछा और कारण जान लेने पर उसने जरत्कारु नामकी कन्या से विवाह किया और सन्तान उत्पन्न होने पर गृहस्थ का भार उस पर छोड़ कर तपस्या के द्वारा मुक्ति प्राप्त की। इसलिये आप भी राजा की प्रार्थना स्वीकार कर यहां रहें और पुत्र-मुख देखकर पितृऋण से मुक्त हों। ऐसा करने से यह लोक और परलोक दोनों सुधर जायँगे। यदि क्रोध के वश में होकर आपलोग राजा को शाप देंगे, तो यह अनर्थ हमारे द्वारा होने के कारण उसके साथ हम भी नष्ट हो जावेंगी और यह स्त्री-हत्या का पाप आपको लगेगा।"

यह सुनते ही ऋषिगण शाप देना भूल गये। उनका क्रोध जाता रहा। अनुनय-विनय कर गृह-देवियों को प्रसन्न किया और कहा कि "राजा की प्रार्थना के अनुसार कार्य करेंगे। क्योंकि राजा के शरीर में सब देवताओं का निवास है। इसलिये उसको प्रसन्न करना देवताओं को प्रसन्न करना है।"

इधर ऋषियों के लौट आने की सूचना पाकर मूलराज दौड़ा आया और बोला—"देवतागण! यह राज्य आपके चरणों में अर्पण है। अब मैं ईश्वर-भजन करना चाहता हूँ।" ऋषियों ने शांति देते हुए उत्तर दिया—"राजन्! चारों वर्णों के लिये कल्याण की कामना होने पर भी मार्ग भिन्न २ हैं। ब्राह्मण शान्त भावसे ईश्वर-भजन करते हुए, क्षत्रिय सावधानी से सब की रक्षा करते हुए, वैश्य शक्ति के अनुसार अन्न-वस्त्र की सहायता करते हुए और शूद्र प्रसन्न चित्त से सेवा करते हुए अपना परलोक सुधार सकते हैं। इसलिये

आप अपने कार्य से ही अपना कल्याण कर सकते हैं। दूसरे, इस कलिकाल में एक खेत की रक्षा करना भी कठिन है, तो ऐसे विशाल राज्य की रक्षा हम-जैसे शान्त तपस्वियों के लिये कैसे सम्भव हो सकती है। इसलिये आप ही को प्रजा का पालन करना चाहिये।

राजा ने कहा—यदि आपकी यही धारणा है, तो इस स्थान पर रहना तो स्वीकार कीजिये। प्रतिदिन श्रीचरणों के दर्शन कर अपने को धन्य समझूंगा। यह स्वीकार कर लेने पर मूलराज ने अपने बनवाये विशाल 'रुद्रमहालय' नामक शिवमन्दिर की वि० सं० १०४३ (ई० स० ९८६) में प्रतिष्ठा करवाई और उन तीर्थयात्री ब्राह्मणों को वि० सं० १०४३ से १०५३ (ई० स० ९८६ से ९९६ तक) पृथक् पृथक् प्रान्तों में पृथक् पृथक् गाँव प्रदान किये।

एक हजार सेंतीस ब्राह्मणों में से पाँच सौ ब्राह्मणों को सिद्धपुर प्रान्त में एक सौ सत्तर गाँव और पाँच सौ को सिहोर प्रान्त में ८८ गाँव दान में दिये—जो सिद्धपुरिया और सिहोरिया भेद से सहस्र औदीच्य कहलाये। शेष ३७ ब्राह्मणों को खंभात प्रान्त में १५ गाँव दान में मिले, जो टोला बाँध कर रहने के कारण टोलकिया औदीच्य कहलाये। भारत के चारों ओर मूलराज के दान की महिमा होने लगी और जीविका-प्राप्ति की आशा से अनेक ब्राह्मण कुटुम्ब गुजरात की तरफ चल पड़े। उस समय विकट जंगल और विषम घाटियों में होकर वेद घोष करते हुए तथा कन्द-मूल-फल खाते हुए ब्राह्मणगण गुजरात में आ पहुँचे। मार्ग की भयंकरता, थकावट, बीमारी आदि अनेक कारणों से जो

लोग वहां तक नहीं पहुँच सके थे, वे मार्ग में पड़ने वाले नगरों और गाँवों में बस गये थे। उनको भी मूलराज से अथवा मूलराज के अधीन राजाओं से अच्छा सत्कार और आश्रय मिला था।

मूलराज के द्वारा यज्ञ में वरण होकर और दक्षिणा में ग्राम आदि पाकर सहस्र औदीच्य ब्राह्मण आनन्द-पूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे। जब तक मूलराज के वंशजों का राज्य गुजरात में बना रहा, तब तक ब्राह्मण लोग राज-सन्मान पाते रहे। सिद्धराज जयसिंह के समय में वि० सं० ११५१ से १२०० (ई० सं० १०९४ से ११४३ तक) तो ब्राह्मणों के सत्कार में और भी वृद्धि हुई। मुसलमानों के आक्रमण से नष्ट हुए 'रुद्रमहालय' मन्दिर का जीर्णोद्धार कराकर उसकी प्रतिष्ठा में अनेक गांव दानमें दिये और जिनके मूलराज के समय में मिले हुए गांवों के ताम्रपत्र खो गये थे, उनको फिर से नये ताम्रपत्र बनवा दिये गये।

समय के प्रभाव से और बहुत काल तक पास-पास रहने के कारण से गुजरात में निवास करने वाली गुजराती ब्राह्मण जाति और उत्तर से आई हुई औदीच्य जाति एक हो गई। उस समय ब्राह्मण-मात्र का भोजन-कन्या-व्यवहार एक होने के कारण ऐसा होने में कोई बाधा भी उपस्थित नहीं हुई। आज भी वहाँ इसकी झलक विद्यमान है। आज भी गुजरात के ब्राह्मणों की चौरासी तथा शंभुमेख कराई जाती है, जिसमें सभी ब्राह्मण एक पंक्ति में बैठ कर भोजन करते हैं। यह ब्राह्मणों के एक होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

—:o:—

गुजरात से प्रयाण

विक्रम सवत् १०८२ (ई० स० १०२५) में महमूद गजनवी ने गुजरात पर आक्रमण किया और सोमनाथ के मन्दिर को तोड़ कर वहाँ से अनन्त धनराशि हाथियों पर लाद कर अपने देश गजनी को ले गया।

वि० स० १२०१ (ई० स० ११४३) के आस पास मालवे के राजा सुभटवर्मा ने और उसके पुत्र अर्जुनदेव ने गुजरात को नष्ट-भ्रष्ट किया।

वि० स० १२४५ (ई० स० ११८७) के आस-पास कुतुबुद्दीन ने गुजरात पर आक्रमण कर अपना अधिकार जमाया।

वि० स० १२५५ (ई० स० १२१७) में दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने अपने छोटे भाई उलगखा तथा नसरतखा जलेसरी की अध्यक्षता में गुजरात पर आक्रमण कर वहाँ की राजधानी छीन ली और विशाल शिव मन्दिर को तुड़वा दिया। उस समय राजा ने भाग कर देवगिरि के यादव-राजा रामदेव की शरण ली।

इस प्रकार मुसलमानों के वि० स० १५०० (ई० स० १४४३) के आस पास तक बराबर आक्रमण, अत्याचार, युद्ध विग्रह होते रहने से गुजरात की दशा बिगड़ गई। एक जाति / दूसरी जाति में मिल गई और जहाँ जिसको आश्रय मिला भाग निकली। इसी भाग-दौड़ में ब्राह्मणों में विद्या का ह्रास और मूर्खता का स्वागत होने लगा। निरापद स्थान पर निवास करने वाले ब्राह्मणों में आगन्तुक ब्राह्मण मिलने लगे और वे गुजरात में रहने वाले या पीछे छूट गये अपने बन्धु-बान्धवों, सगे सम्बन्धियों, इष्ट मित्रों, और अपरिचित

सूकरस्य हरेर्यत्र नेत्राभ्यां विन्दवोऽपतन् ।
तत्र विन्दुसरो जातं देशे गुर्जर-संज्ञके ।
सरसस्तस्य सविधे कर्दमस्तप आचरत् ।
पवित्रा तत्र नगरी विश्रुता पाटणाख्यया ।
ततः सर्वान् समादाय मुनिपुत्रान् महौजसः ।
अगमत्पाटणपुरीं श्रीलाडो भगवान् प्रभुः ।
तत्र सिद्धस्थले सर्वान् वासयामास तान् मुनीन् ।
तेषां कुलानि क्रमशस्तत्र वृद्धिमुपाययुः ।
गते काले वहुतिथे वर्धमाना यथोत्तरम् ।
उम्रेटनगरीं गत्वा गुर्जरे न्यवसँश्चिरम् ।
उदीच्यां वासतः पूर्वमुदीच्या अपि ते पुनः ।
उम्रेटवासादुम्रेटा इति ख्यातिमवाप्नुवन् ।

उपर्युक्त श्लोकों में प्रथम भगवान् विष्णु से कश्यप तक की सृष्टि वताई है। वाद में कहा है कि कश्यप का दूसरा पुत्र श्रीलाड़ हुआ जिसने नैमिषारण्य में छानवें हजार वर्ष पर्यन्त तप कर भगवान् विष्णु को प्रसन्न किया। फिर अयोध्या के पास सरयू के तीर पर तप किया। भगवान् विष्णु की प्रेरणा से और तप के प्रभाव से दर्भपुञ्ज लेकर १२ मुनियों की सृष्टि की। जिनके गोत्र 'शाण्डिल्य-कौण्डिन्य' इस श्लोक में वताये हैं। उन मुनिपुत्रों को श्रीलाड़ ने सिद्धपुर में सरस्वती नदी के तीर पर वसाया। कालान्तर में वंशवृद्धि होने पर ये गुजरात के उम्रेट गांव में जाकर

बसे। इसीसे उमेटा नाम हुआ। ये अयोध्या के पास के उत्तर प्रदेश से गये हुए थे इसलिये औदीच्य कहे गये।

सच्चा इतिहास बनाने वाले ताम्रपत्र, शिलालेख, पट्टे, परवाने आदि के मौजूद रहते हुए भी भारतीय जनता अपनी इतिहास की प्यास पुराण-उपपुराण एवं भाट, बडवा, रावों की पुस्तकों द्वारा शान्त करती थी। पुराण-उपपुराण संस्कृत भाषा में हैं, इसलिये इनका आशय तो विद्वान् ही समझते थे, परन्तु भाट-बडवा-राव अपनी पुस्तकें लेकर सब प्रान्तों में घूमते थे और अपने यजमानों को उनको उत्पत्तिकथा, वंशवर्णन आदि सुनाकर उनसे दक्षिणा लेते थे। अत एव अपने इतिहास के विषय में सभी प्रान्तों के जाति बन्धुओं की धारणा उक्त पुस्तकों के आधार पर प्रायः समान-सी हो जाती थी। आमेटा जाति की उत्पत्ति के विषय में भी सभी प्रान्तों के जातिबन्धुओं की धारणा अधिक अंशों में समान ही है, जिससे ऊपर लिखे हुए उत्पत्ति विवरण का समर्थन होता है। जातिबन्धुओं के पास जो प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ हैं उनमें भी कहीं कहीं 'थोलाइ औदीच्य आमेटा' ऐसा नाम लिखा हुआ मिलता है।

अभी इतिहास का संग्रह करने के लिये भिन्न २ प्रान्तों के अनेक जातिबन्धुओं से पत्र-व्यवहार किया। इनमें से प० बैजनाथ प्रसादजी शुजालपुर, प० रामचरण द्वारकाप्रसाद जी आकोदिया मंडी, प० रमाकान्त शास्त्रीजी जोरापुर, प० रामचन्द्र जी ज्यौतिषी देवास, प० हरिरामाचार्य जी घोड़ा आदि भिन्न २ प्रान्तों के जातिबन्धुओं ने आमेटा जाति को औदीच्यों के अन्तर्गत स्वीकार कर 'थोलाइ औदीच्य आमेटा' यह जाति-नाम प्रामाणिक माना है।

आमेटा-जाति की उत्पत्ति के कथा भाग में कहीं कुछ अन्तर अवश्य है जिसका परिचय पाठकों को इन अग्रिम अवतरणों से होगा।

(१) भाट कहते हैं कि:—

श्रीलाड़जी ने अपने तपोबल से घास के तेरह पुतले बनाकर उनको मनुष्य बना दिया, जीवित कर दिया और प्रत्येक का गोत्र भिन्न २ नियत किया, जिससे आमेटा ब्राह्मणों में तेरह गोत्र हुए।

(२) हरिरामाचार्यजी बनेड़ा ने लिखा है कि:—

श्रीलाड़ कश्यप के पुत्र थे। इन्होंने तपोबल से ब्राह्मणों के तेरह गोत्र नियत किये। ये सब श्रीलाड़जी के अनुयायी सिद्धपुर पाटन से रवाना होकर गढ़ पटनाल (उमरेठ) आये और उमरेठा कहलाये। वहाँ से फिर मेवाड़, मारवाड़, मालवा आदि प्रान्तों में फैले। ऐसा मारवाड़ के सजातीय वृद्ध पुरुषों से सुना है।

(३) शास्त्री रामाकान्तजी जीरापुर (होल्कर स्टेट) ने लिखा है कि—पं० यमुनादासजी, राजगुरु खिलचीपुर, आमेटों को श्रीलाड-औदीच्य मानते थे, यह वृद्धिचन्द्रजी आचार्य के द्वारा मालूम हुआ। गुजराती खेड़ावाल ब्राह्मण भी अपने को उमरेठा-खेड़ावाल कहते है। संभव है श्रीलाड-औदीच्य भी उमरेठ मे रहने से उमरेठा कहलाये हों।

(४)प० जसराजजी उपाध्याय राजवैद्य, जोधपुर ने लिखा कि -

जिन ऋषियों ने अम्बाजी की उपासना की वे अम्बाजी के बेटे कहलाये। उन्होने 'अम्बावती' नगरी बसाई, जिसका नाम कालान्तर में परिवर्तित होकर 'आमेट' हो गया। इसमें जो अम्बाजी के भक्त-ब्राह्मण रहे उनका नाम आमेटा हुआ। जैमिनि के शिष्यवंश में हिरण्यनाभ थे। इन्होंने अपने ५०० शिष्यों को सामवेद की उदीच्य सामग शाखा पढाई। इस शाखा के पढनेवाले भी उदीच्य-सामग कहलाये। कालान्तर में सामग शब्द छुट गया और केवल उदीच्य कहलाने लगे। मारवाड के राव जोधाजी ने मंडोवर का किला बनवाया, उस अवसर पर आमेट गाव से उदीच्य आमेटा गणपतिदत्तजी एव इनके अनुयायी निमंत्रित होकर वि० स० १५१० में मारवाड़ में गये' एव पिशाच-बाधा दूर कर किला बनवाने में अच्छी सहायता की।

इन सभी मतों के देखने से इतना तो निश्चित होता है कि आमेटा औदीच्य हैं इसमें सभी सहमत हैं। गुजरात के उमरेठ या मेवाड़ के आमेट गावों में रहने से आमेटा कहलाये, केवल इतना सदिग्ध है।

यद्यपि अब तक किसी पुराण-उपपुराण जैसे प्रामाणिक ग्रन्थ में ओलाड़ ऋषिका नाम उपलब्ध नहीं हुआ, परन्तु अभी से ४० वर्ष पूर्व छुरावड़ निवासी प० नन्दकिशोरजी ज्योतिषी ने सिद्धपुर में रहते हुए सरस्वती के तीर पर यह

'श्रीलाड़' का चबूतरा है ऐसा सिद्धपुरवासी वृद्धों से परिचय पाया था। अतएव 'श्रीलाड़' नाम का कोई पुरुष हुआ ही नहीं यह तो नहीं कह सकते। पुराणों में श्रीलाड़जी का नाम तो, अर्वाचीन होने से, नहीं हो सकता है।

श्रीलाड़जी सूर्य के पुत्र थे इत्यादि अतिशयोक्तियाँ हैं। प्रायः सभी भारतीय प्राचीन कथाओं में ऐसी अतिशयोक्तियाँ मिलती हैं। इनमें जितना सत्यांश हो उतना ही अपनी विवेचक बुद्धि से उद्धृत कर लेना उचित है।

जोधपुर के राजवैद्य जसराजजी ने 'राव जोधाजी की ख्याति' के अनुसार शाखा का नाम उदीच्य सामग बताया, परन्तु यह उल्लेख 'औदीच्य-प्रकाश' 'श्रीस्थल-प्रकाश' आदि ग्रन्थों में नही है एवं सभी औदीच्य या आमेटा सामवेदी नहीं हैं। सामवेद की शाखाओं में से उदीच्य-सामग नाम की कोई शाखा हिन्दुस्तान में प्रचलित भी नहीं है। शुजालपुर-मंडल में सामवेद की कौथुमी शाखा वाले कुछ आमेटा हैं। मूल लेखक का तात्पर्य तो इतना ही हो सकता है कि आमेटा औदीच्य हैं और जसराजजी के सामवेदी होने से 'सामग' शब्द जोड़ा गया है।

मारवाड़ से तीन ताम्र-पत्र प्राप्त हुए हैं जो वि० सं० ११३७, ११३९, ११४२ के हैं, जिनका विशेष वर्णन आगे मारवाड़ी-मण्डल के इतिहास-प्रसंग में किया जायगा। इन ताम्र-पत्रों में दान लेनेवाले ब्राह्मणों के नामों के साथ आमेटा शब्द है, जिससे मालूम होता है कि 'आमेटा' शब्द विक्रम की १२ वीं शताब्दी से पूर्व ही इस जाति के लिये रूढ हो चुका था एवं विक्रम की १२ वीं शताब्दी में ही आमेटा जाति मेवाड़-मारवाड़ में प्रवेश कर चुकी थी।

इतना विषय सभी प्रान्तों के आमेटों की मान्यता, भाटों की ख्यातें और कुछ ताम्र-पत्र इनके आधार पर लिखा गया है। इसके प्रतिकूल कोई भी लिखित प्रमाण अबतक हमें नहीं मिले हैं। अतएव इसके किसी भी अंश को दावे के साथ मिथ्या कहने में तो हम समर्थ नहीं हैं, परन्तु वर्तमान समय में तर्कों का साम्राज्य है। जब तक विषय तर्कों से परिमार्जित न हो तब तक आधुनिक विद्वानों के लिये बुद्धिग्राह्य या श्रद्धेय नहीं हो सकता। अतएव जो आमेटों को औदीच्य या कम से कम गुजराती मानने के लिये भी तैयार नहीं हैं उनके विरोधी तर्कों का उपन्यास कर उनकी समालोचना कर लेना भी यहाँ आवश्यक है, क्यों कि वस्तु का अनुकूल-प्रतिकूल दोनों दृष्टियों से विचार करने के बाद ही वस्तुज्ञान पूर्ण समझा जाता है।

विरोधी तर्क ये हैं—

(१) औदीच्य जातिका उदय सोलकी मूलराज के समय में हुआ था, जो वि० स० १०५१ तक वर्तमान था। तब फिर ८०, ६० वर्षों के भीतर ही इतना परिवर्तन कैसे हो गया कि इस जाति के लोग विशाल गुजरात प्रदेश को पार कर मेवाड़ में आगये और अपना असली 'औदीच्य' नाम न लिखा कर ताम्र-पत्रों में 'आमेटा' नाम का उल्लेख कराने लग गये।

(२) मालवा, मेवाड़ आदि प्रदेशों में जितनी भी गुजरात से आई हुई जातियां हैं उनके कुछ हिस्से आज भी गुजरात में

हैं, जिनके साथ इनका व्यवहार है। कोई भी समाज सब सम्बन्धियो के साथ एक स्थान को छोड़ कर दूर देश मे चला जावे—यह संभव नहीं है। कुछ सगे-सम्बन्धी छूट जाते हैं, जिनके साथ पीछे बहुत समय तक दूसरे देश मे गये हुए लोगो का सम्बन्ध बना रहता है, परन्तु आमेटा जाति का कुछ भी अंश गुजरात में कभी रहा हो और उसके साथ व्यवहार रहा हो ऐसा साबित नहीं होता है।

(३) गुजरात से आई हुई औदीच्य, नागर आदि सभी जातियो के व्यवहार गुजरातियों से मिलते हुए है और वेष-भाषा भी टूटे-फूटे रूप मे गुजरातियो के समान ही है, परन्तु आमेटो के व्यवहार, वेष-भाषा गुजरातियो से मिलते हुए नहीं है। दूसरो के हाथ का पयःपक्व भोजन करना औदीच्यो का असाधारण लक्षण नहीं है। ऐसा व्यवहार सभी पंच द्रविड़ रखते हैं।

(४) औदीच्य, नागर आदि जातियो मे वर-कन्याओं के हाथों से विवाह-होम होता है, परन्तु आमेटो मे वर-कन्याओ की ओर से दूसरे होम करते हैं। औदीच्यो में मंगला-गौरी, वट-सावित्री आदि कई व्रत स्त्रियाँ नियमित करती हैं, परन्तु आमेटो में ये नियमित नहीं है।

(५) श्रीस्थल-प्रकाश, औदीच्य-प्रकाश आदि ग्रन्थों में

औदीच्यों की कोई 'श्रीलाड शाखा' देखी नहीं, न आमेटोंका नाम है।

(६) गणपति, कुलदेवी, भेख, शिव इनके कुलभेद के अनुसार भिन्न-भिन्न नाम जैसे औदीच्यों में प्रसिद्ध हैं, ऐसे आमेटों में नहीं हैं।

(७) चन्द्रात्रेय और आलम्बायन गोत्र औदीच्यों में नहीं हैं, परन्तु आमेटों में हैं।

(८) गुजरात से आये हुए ब्राह्मण आमेट में जाकर बसें, यह संभव नहीं है, क्योंकि आमेट प्राचीन समय में किसी भी प्रसिद्ध राजा की राजधानी नहीं थी, न जहाँ बड़े धनिकों का निवास था, न किसी प्रसिद्ध नदी का किनारा था।



समाधान

सर्वथा निर्मूल कोई प्रसिद्धि नहीं होती है, इसलिये 'श्रीलाड़ औदीच्य' नाम सर्वथा मिथ्या प्रचलित हो गया ऐसा नहीं कह सकते। 'श्रीलाड़' शब्द गुर्जरों से सम्बन्ध रखता हुआ है यह भी निःसन्दिग्ध है। लाट देश का पश्चिमी हिस्सा गुजरात के अन्तर्गत था, जहाँ के मूल निवासी ब्राह्मण और वैश्य आज भी गुजरात में लाड कहे जाते हैं। यह असंभव नहीं कि 'श्रीलाड़ औदीच्य' भी किसी समय लाट देश में रहे हों और वहाँ के नाम से ही 'लाड़

कहे गये हों। श्री शब्द प्रतिष्ठा सूचक या अम्बाजी की भक्ति प्रमाणित कराने के लिए लगाया जा सकता है। गुजरात का वर्तमान उमरेठ गांव प्राचीन लाट देश के अन्तर्गत है, क्योंकि लाट देश की सीमा वर्तमान भोपाल राज्य के समीप से वड़ौदे तक थी और ऐसा मानने से श्रोलाड और उमरेठा इन दोनों शब्दों का एक साथ रहना भी संगत हो सकता है, क्योंकि एक देश का नाम है और दूसरा उसी के अन्तर्गत गांव का नाम है।

श्रोलाड नाम अटपटा मालूम होता है। कोई अपने बेटे का ऐसा नाम रक्खे यह कम संभव है। 'श्रोलाड' किसी पुराण-प्रसिद्ध महात्मा का नाम भी नहीं है। अतएव आमेटों ने मिथ्या प्रशंसा प्राप्त करने के लिये अपनी जाति के नाम के साथ इसे जोड़ दिया है यह भी नहीं कह सकते। विशेषतः जातियों के नाम देश या गांवों के नामों के अनुसार बने हैं, क्योंकि देश और गांवों के नाम से पहिचान शीघ्र हो जाती है। यदि किसी पुरुष के नाम से जाति नाम बने हैं तो वे पुरुष पुराण-प्रसिद्ध हैं। जैसे दधीचि के नाम से दाधीच, छायाशुक के नाम से शुक ब्राह्मण, वाल्मीकि के नाम से वाल्मीकि ब्राह्मण। श्रोलाड ऐसे पुराण प्रसिद्ध नहीं है, जिनके नाम से जातिनाम बने। भाटों का कथन अक्षरशः विश्वास करने योग्य नही होता है। इतिहास के अन्धकार में भाट कई अद्भुत कल्पना कर लिया करते हैं। सूर्य के ऋत और श्रोलाड नाम के दो पुत्र हुए जिनमें श्रोलाड ने नैमिषारण्य में तप किया इत्यादि भाटों की गप्पे हैं। इनका किसी भी पुराण से

समर्थन नहीं हो सकता। अधिक सम्भव यही है कि जाति का औलाड नाम लाट देश के सम्बन्ध से हुआ है। लाड शब्द का अर्थ लाट देश है यह न समझ कर भाटों ने औलाड ऋषि की कल्पना कर ली हो और औदीच्य बहुत प्रसिद्ध होने से जाति के नाम के साथ औदीच्य शब्द का प्रयोग कर सिद्धपुर से आने की कथा कल्पित की हो यह संभव मालूम होता है।

फिर भी सब प्रान्तों के आमेटों की मान्यता और भाटों की ख्याति के आधार पर आमेटा औदीच्य माने भी जाँय तो पूर्वोक्त आचार-व्यवहार का भेद बाधक तो नहीं हो सकता। इनके वेष-भाषा, आचार, देवी महादेव, आदि औदीच्यों के समान नहीं हैं इसका तो यही कारण है कि औदीच्यों की गुटबन्दी होने से पूर्व ही आमेटों के मूल पुरुष औदीच्यों से पृथक् होकर दूर प्रदेश में चले गये थे।

औदीच्यों ने गुजरात के मूलनिवासियों के अनुचित आचार-व्यवहार देख कर अपना पृथक् समाज नियत किया होगा। उसमें दूसरे छल से प्रवेश न करें, अपने वर्ग वालों का परिचय ठीक हो सके, इसके लिये अपने अन्तर्गत वर्गों के महादेव, गणपति, भैरव इत्यादि पृथक नियत किये होंगे। फिर इनका संग्रह कर ग्रन्थों में सन्निवेश किया होगा। इतने कार्य के लिये लम्बा समय चाहिये। औदीच्यों के इतिहास के प्राचीन ग्रन्थ 'श्रीस्थल प्रकाश' 'पुराण सार-संग्रह' आदि में मूलराज के पिता का नाम चामुंडराज लिखा है, परन्तु नये इतिहासों ने 'राजि' बताया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि औदीच्यों के आश्रयदाता मूलराज के पिता का नाम भी जब औदीच्य

भूल गये थे उस समय औदीच्यों ने विवरण का संग्रह कर ग्रन्थों का बनाना प्रारम्भ किया था। अतः इतना समय व्यतीत होने से पूर्व औदीच्य-समाज का कोई अंश उससे पृथक् हो जावे तो असंभव नहीं है। एवम् ऐसे पृथक् हुए अंश पर मूल समूह के प्रभाव का कम रहना भी योग्य ही है। पीछे से बने हुए ग्रन्थों में ऐसे पृथक् हुए अंश का वर्णन भी उपलब्ध नहीं हो सकता।

मूल समाज से पृथक् होने के तो अनेक कारण हो सकते हैं—शत्रुओं का आक्रमण हुआ हो, या आजीविका किसी ने छीन ली हो, या देर से पहुँचने पर इच्छानुसार जागीर ज़मीन न मिली हो, या सिद्धपुर न पहुँच कर मार्ग में ही लाट देश में ठहर गये हों। इनमें से किसी एक कारण का निश्चय करना साधनों का अभाव होने से अशक्य है।

मारवाड़ में आमेटों को जो ज़मीनें मिली हैं वे उनके वंशजों के नाम आज भी बहाल हैं। जमीन की पैमायश, ताम्रपत्रों की जाँच रियासत की ओर से हो चुकी है। ताम्रपत्रों के पतरे पुराने ढंग के आड़े-टेढ़े हैं, जिनसे उनकी प्राचीनता प्रमाणित होती है—यह ताम्रपत्रों की नक़लें भेजने वालों का कथन है, परन्तु मेवाड़ और मारवाड़ में इतने प्राचीन अन्य दानपत्र मिले नहीं हैं। प्राचीन लिपियां भ्रामक होती हैं। प्राचीन समय का ७ का अंक वर्तमान समय के १ जैसा लिखा जाता था। पीढीनामे देखे गये तो उनमें १०० वर्षों में ५ पीढ़ियां यह हिसाब लागू नहीं होता है। अतएव उपर्युक्त ताम्रपत्रों में तो नहीं, किन्तु ताम्रपत्रों के समय में संदेह अवश्य हो जाता है। अतएव विक्रम की १२ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में सहस्रौदीच्य गुजरात पार

कर मारवाड़ में कैसे आ पहुँचे इस शका का निवारण हो जाता है।

(१) यद्यपि इस जाति में स्मार्तों के समान अनेक देवों के उपासक लोग थे। वर्तमान समय के वैष्णवों के समान एक ही देव की भक्ति करनेवाले अनन्य भक्त कम थे, परन्तु देवी के उपासकों की सख्या अवश्य अधिक थी। त्रिलोचन भट्टजी, शास्त्री शंकरजी, नवाणिया वाले वटुकनाथजी का २... इन्होंने जो उन्नति की, यह सब भगवती की ही भक्ति का प्रभाव था ऐसा सुना जाता है।

(२) जोधपुर के वैद्य जसराजजी ने लिखा कि—आमेटों के पूर्व पुरुष अम्बाजी के भक्त थे और इन्होंने अम्बावती नगरी बसाई, जिसका नाम कालान्तर में परिवर्तित होकर आमेट हो गया।

(३) अर्वली पर्वत के पास बसे हुए केलवाड़े से आये हुए कश्यपगोत्रीय आमेटा अपनी कुल देवी का नाम अम्बाजी बताते हैं। इन सब कथानकों पर विचार करने से अनुमान होता है कि आमेटों के पूर्वपुरुष सिद्धपुर या लाट देश से चल कर कुछ समय आबू के समीप में वर्तमान श्रीअम्बाजी के पवित्र धाम में रहे होंगे। गुजरात में अम्बाजी की भक्ति विशेष है और यह अम्बाजी का स्थान बहुत पुराना है। आद्य शंकराचार्य भ्रमण करते हुए स्वयं यहा आये थे और अम्बाजी की स्तुति अम्बघाटी छन्द में की थी जो प्रसिद्ध है। आपत्ति के समय ऐसे पहाड़ी प्रदेश में रहना उपयोगी भी है। शत्रुओं से बचने की सुविधा रहती है। अम्बावती नगरी बसाने का भी यही तात्पर्य होना संभव है।

प्राचीन समय में यवनों का आक्रमण देशस्थानोंपर विशेष होता था इसलिये ऐसे किसी अवसर पर आमेटों के पूर्व पुरुष श्रीअम्बाजी के स्थान का त्याग कर अर्बली पर्वत के तलेटी के मार्ग से सफर करते हुए श्रीचारभुजाजी के समीप के मेवाड़-प्रदेश में आ पहुँचे होंगे। वर्तमान समयके-से सफर के प्रशस्त मार्ग उस समय नहीं थे। यात्री किसी नदी या पहाड़ के किनारे किनारे सफर करते थे। यवन बादशाहों के आने के बाद इनकी फौजें देश में दौड़ा करती थीं, जिनसे कुछ मार्ग बन गये होंगे, परन्तु यवनों के आक्रमण के भय से ऐसे फौजी रास्तों से सफर करने की शक्ति धर्मभीरु ब्राह्मणों में कैसे हो सकती थी। वे तो ऐसे ही लुके-छिपे पहाड़ी रास्तों से सफर कर सकते थे। ऐसे मन्तव्य से उस तर्क का उत्तर भी मिल जाता है कि आमेटों के मूल पुरुष गुजरात से चलकर सीधे आमेट में कैसे जा पहुँचे, क्योंकि आपत्ति के समय तो अपने प्राण बचाने की ओर मनुष्यों का लक्ष्य रहता है उस समय स्थान की सुन्दरता और योग्यता नहीं देखी जाती है।

मूलराज से प्रतिग्रह पाकर उसकी राजधानी के आस-पास जो बसे थे उनकी संख्या सहस्र के समीप थी। इसलिये उनका नाम सहस्रौदीच्य हुआ। इनमें ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद इन तीनों वेदों के पढ़नेवाले प्रारम्भ से ही हैं। टोलकिया औदीच्यों को मूलराज ने पीछे से स्तम्भतीर्थ (खंबात) का प्रदेश दिया था। इनमें केवल शुक्ल यजुर्वेद और ऋग्वेद इन दो वेदों के पढ़नेवाले ब्राह्मण हैं। यदि प्रारम्भ से ही आमेटों में सामवेदी रहे हों तो इनका सहस्रौदीच्यों में

अन्तर्भाव होना सभव है, भाट-बडवे भी सिद्धपुर से आने की कथा बताते हैं, जिससे भी इसी का समर्थन होता है।

अब गोत्रों की एक आपत्ति शेष रही है। आलम्यायन चान्द्रायण और चन्द्रात्रेय गोत्र न तो सहस्रौदीच्यों में हैं और न टोलकियों में हैं, इसका समाधान तो यही हो सकता है कि इन गोत्रों के सभी पुरुष आमेटों के मूल पुरुषों के साथ चले आये या शेष रहे थे वे 'श्री स्थलप्रकाश' आदि ग्रन्थों के निर्माण से पूर्व ही नष्ट हो गये।

भारद्वाजगोत्रीय त्रिलोचन भट्ट का महाराणा लक्षसिंह ने अच्छा सन्मान किया था। मेवाड में इसको तीन गाव जागीर में मिले, जो इसके वंशजों के पास अभी मौजूद हैं। त्रिलोचन का एक शिलालेख कडिया गाव में है, जिसमें त्रिलोचन भट्ट के दादा का नाम सोढड और इसकी पत्नी तारा के दादा का नाम नादा था। इन नामों से अनुमान होता है कि त्रिलोचन भट्ट के और इसके ससुराल वालों के पूर्वपुरुष मेवाड के या मारवाड़ के समीप भाग के रहनेवाले थे। यानी त्रिलोचन भट्ट के समय से कम से कम १२५ वर्ष पूर्व तक मेवाड-मारवाड़ से सबन्ध रहने का इससे अनुमान होता है। महाराणा लक्षसिंह का स्वर्गवास विक्रम सवत् १४७८ के आस-पास हुआ है। इससे यह साबित होता है कि विक्रम सवत् १३५० के आस पास तो आमेटा मेवाड़ मारवाड में अवश्य थे। निश्चित सवत् तो मालूम नहीं है, परन्तु विश्वस्त पुरुषों से सुना है कि गाव तितरडी के आमेटों के पास विक्रमकी १४ वीं शताब्दी का मेवाड़-राज्य की ओर से मिला हुआ दान-पत्र है। इससे भी उपर्युक्त समय का समर्थन होता है।

जोधपुर के वैद्य जसराजजी के पूर्व पुरुष आमेट से मारवाड़ में जाकर आबाद हुए। मारवाड़ के लाँबा मोहेरा गांवों के चन्द्रात्रेय अचाड़ी वीरवास से गये हुए हैं। इन बातों से मालुम होता है कि आमेट-आदि चारभुजा-प्रान्तों के गांवों में आमेटों का निवास प्राचीन है। अंबावती नगरी बसाने की कथा में यदि कुछ सत्य हो तो अनुमान होता है कि आमेटा कुछ समय आबू के पास जो अम्बाजी का स्थान है वहाँ रहे होंगे। अम्बाजी का धाम आबू के पास हो और इनके नाम से नगरी बसाई गई मेवाड़ में यह विश्वसनीय नहीं है। श्रीनाथजी जहाँ विराजते हैं वही नाथद्वारा बसा है, वहीं सादड़ी या निम्बाहेड़े के पास तो नहीं बसा है।

आमेटा लाट-देश को त्याग कर आबू के आस-पास कब आये, कितने समय वहाँ रहे, वहाँ से मेवाड़ तक आने में कितना समय लगा, क्या २ घटनाएं हुईं, ये सब निर्णय विना किसी मूल के केवल तर्कों के आधार पर नहीं हो सकते। अतएव इनके विषय में मौन रखना ही उचित है।

विक्रम की १४ वी शताब्दी से प्रारम्भ कर वर्तमान समय तक आमेटा जाति को कुल मिलाकर कई हजार बीघा जमीन मेवाड़, मारवाड़, मालवा, वागड़, कांठल आदि भिन्न २ प्रान्तों के राजाओं की ओर से दान में मिल चुकी है। इस जाति के भाग्यवान् पुरुष राजस्थान, देवस्थान आदि में पुरोहिताई, कर्मकाण्ड, पण्डिताई, ज्यौतिषवृत्ति आदि ब्राह्मणोचित वृत्तियाँ, कई शताब्दियां बीत चुकी हैं, कर रहे हैं। अब यदि यह अन्य जातियों के समान लाट देश से आई हुई स्वतन्त्र ब्राह्मणजाति प्रमाणित हो तो इससे इसकी प्रतिष्ठाकी कोई हानि नहीं है और औदीच्य प्रमाणित हो तो प्रतिष्ठाकी

कोई वृद्धि नहीं है। रावी ने जो इस जाति का पृथक् उत्पत्ति-विवरण लिखा इससे भी यह अनुमान अवश्य होता है कि आमेटा जाति सिद्धपुरीय औदीच्यों की शाखा नहीं है, किन्तु स्वतन्त्र ब्राह्मण जाति है, क्योंकि शाखा होने पर पृथक् उत्पत्ति-विवरण लिखने की आवश्यकता नहीं होती है और न किसी शाखा ने ऐसा किया है।

आमेटा मेवाड़ के मूलनिवासी हैं यह भी श्रद्धा करने योग्य नहीं है, क्योंकि जो जातिया महाराणा कुम्भकर्ण के राज्य समय से पूर्व मेवाड़ में बस चुकी थी और जिनको अपना उत्पत्ति-विवरण उपलब्ध नहीं था उन्होंने पद्मपुराण के पातालखण्ड में, जहाँ कि भगवान् श्री एकलिङ्गेश्वरका माहात्म्य वर्णित है, अपना २ उत्पत्तिविवरण प्रविष्ट कर दिया था, परन्तु वहाँ आमेटा-जाति की उत्पत्ति-कथा नहीं है। उक्त माहात्म्य बनने के समय आमेटा जाति में भी त्रिलोचन भट्ट-जैसे योग्य विद्वान् थे, परन्तु वे अपने-आपको मेवाड़ के मूल निवासी नहीं मानते थे, इसलिये उन्होंने उक्त पातालखण्ड में प्रविष्ट होने की चेष्टा नहीं की।

इस जाति ने भगवान् के दर्शनों के लाभ के साथ-ही-साथ पारस्परिक झगड़ों को सुधारने के लिये मेवाड़ के पवित्र तीर्थस्थान 'श्रीचारभुजाजी' में एक पचायत स्थापित की। इसकी बैठक प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ला एकादशी के उत्सव के अवसर पर एक बार होती है। यह भी मेवाड़ में आमेट के आस-पास बस जाने का एक सबल प्रमाण है। श्रीचार-भुजाजी की पचायत से लिखे गये पत्र का मेवाड़ के सभी आमेटा मान करते हैं।

जन-संख्या बढ़ने पर यह जाति संपूर्ण मेवाड़ में फैल गई थी एवं पीछे के समय में और अधिक वृद्धि होने पर मेवाड़ का त्याग कर मारवाड़, झालावाड़, बागड़, कांठल, ग्वालियर, इन्दौर, धार, देवास आदि दूर २ प्रान्तों में इस जाति के लोग जा बसे हैं, परन्तु आज भी मेवाड़ में इस जाति की जितनी जनसंख्या है उतनी अन्य प्रान्तों में नहीं है। एवं अन्य प्रान्त वालों में अधिक लोग यह भी स्वीकार करते हैं कि हम पहले मेवाड़ के निवासी थे।

जाति के चार मंडल

दूर २ बस जाने से संमेलन के अवसर पर सब वर्गों का एकत्रित होना बन्द हो गया है और परस्पर का व्यवहार भी शिथिल हो गया है। इस परिस्थिति के अनुसार इस जाति के वर्गों को ४ भागों में विभक्त कर सकते हैं, जो इस प्रकार हैं:—

१ मेवाड़-मंडल २ झालावाड़-मंडल ३ मालवा-मंडल ४ मारवाड़-मंडल। (इन मंडलों के ग्रामादिका पूरा परिचय परिशिष्ट में देखिए)।

मंडलों का परस्पर सम्बन्ध

मेवाड़-मंडल का अन्य मंडलों की अपेक्षा झालावाड़-मंडल के साथ सम्बन्ध विशेष है। मेवाड़-मंडल के जो गांव मालवा-प्रान्त में हैं उनका वैवाहिक सम्बन्ध झालावाड़ में बहुत वर्षों से है। इसकी अपेक्षा अल्प सम्बन्ध मेवाड़-मंडल का मालवा-मंडल से है, जिस मालवा-मंडल में धार, देवास, भोपाल एजेंसी तक के कई गांव सम्मिलित हैं।

इस संबन्ध का परिचय अभी विशेष अन्वेषण करने से मिला है, अतएव सर्व साधारण पाठकों की जानकारी के लिये यहां कुछ उदाहरण उद्धृत किये जाते हैं—

नाचरोद के पं० मुरलीधरजी आमेटा लिखते हैं कि—भाणपुर (झालावाड़) के गोपीकृष्णजी की तीन कन्याओं में से एक जीरापुर में दामोदरजी को, दूसरी नाचरोद में मुरलीधरजी के यहां और तीसरी कनजेड़ा में कन्हैयालालजी को दी गई थी। प्रतापगढ (राजपूताना) के रहनेवाले नन्दलालजी द्विवेदी का विवाह येड़े हुआ है, जो मालवा मडल में है।

शुजालपुर के प्रसिद्ध वैद्य पं० रामभाऊजी धर्माधिकारी का सम्बन्ध अठानेवाले पं० चतुर्भुजजी चन्द्रात्रेय भट्ट से है और धर्माधिकारीजी की बहिन जीरापुर ब्याही गई थी जिससे पं० रामचन्द्रजी ज्यौतिषी का जन्म हुआ है, जो देवास में रहते हैं।

सारंगपुर से पं० भागीरथजी लक्ष्मणजी जोशी, साबिक सरिश्तेदार ज्युडिशियल, लिखते हैं कि—मेरा सम्बन्ध जीरापुर वाले पं० रमाकान्तजी ज्यौतिषी की बहिन से हुआ था। मैं अभी से करीब २५ वर्ष पूर्व उदयपुर आया था और पाठकजी सादर के भतीजे की पत्नी शान्त हुई उसके मोसर में दो दिन जातिभोज में सम्मिलित हुआ था। छापनीवाले शास्त्री मथुरालालजी कृष्णलालजी से मेरा अच्छा परिचय है और अठानेवाले मेरे मौसी-ससुराल में होते हैं।

जीरापुर से पं० रमाकान्त शास्त्रीजी, अध्यापक, मिडिल स्कूल, लिखते हैं कि—आमद के गुणाई ग्राम (जावरा स्टेट)

से लेकर कछोट्या (खिलचीपुर स्टेट) तक एक मंडल है। इस मंडल में १५० घर और ४०-४५ गांव हैं। इस मंडल का विवाह-संबन्ध. भोजन-संबन्ध मेवाड़ के वंबोरी, ढांकनी, सुआखेड़ा, कनजाड़ाँ, नन्दवास आदि गावों से है और मालवा के सारंगपुर, शाजाँपुर, शुजालपुर, पोलाय, राजगढ़, नरसिंहगढ़ आदि गावों से भी है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट मालूम होता है कि मेवाड़-मंडल का मालवा-मंडल के साथ भी अर्से से सम्बन्ध है।

मेवाड़-मंडल का प्राचीन समय में तो मारवाड़-मंडल के साथ भी संबन्ध था। लांवा और मोहेरा के चन्द्रात्रेय त्रिवाडी मेवाड़ के वीरवास गांव से गये हैं। वीरवास में चन्द्रात्रेय त्रिवाड़ियों के इस समय भी २१ घर हैं। जोधपुर में उपमन्युगोत्रीय उपाध्यायों के ५ घर हैं जो मेवाड़ के आमेट गांव से गये हैं। परन्तु इस समय यह मारवाड़-मंडल उपर्युक्त तीनों मंडलों से अपना सम्बन्ध न रखता हुआ केवल २२५ घरों में खींचातानी से अपना व्यवहार चला रहा है।

एक समय वह था कि आसेतु-हिमालय सभी ब्राह्मण परस्पर रोटी-बेटी व्यवहार रखते थे, परन्तु आज यह दशा है कि अशास्त्रीय तुच्छ कारणों से एक अवान्तर जाति के भी अनेक टुकड़े हो गये हैं।

आमेटों में गोत्र

भाटों के और सजातीय वृद्ध पुरुषों के कथनानुसार इस जाति में १२ गोत्र हैं ऐसा माना जाता है जिनका

संग्राहक श्लोक किसी प्राचीन विद्वान् का बनाया हुआ यहाँ दिखाया जाता है—

शाण्डिल्य-कौण्डिन्य-वसिष्ठ-कश्यपा-
श्चान्द्रायण कौशिक-वत्स गौतमा ।
गार्ग्यौ भरद्वाज-पराशरौ चा-
लम्बायनश्चाङ्गिरसस्त्रयोदश ।

इस श्लोक के अनुसार गोत्रों के नाम ये हैं—(१) शाण्डिल्य (२) कौण्डिन्य (३) वसिष्ठ (४) कश्यप (५) चान्द्रायण (६) कौशिक (७) वत्स (८) गौतम (९) गार्ग्य (१०) भरद्वाज (११) पराशर (१२) आलम्बायन (१३) आंगिरस।

विशेष अन्वेषण करने से मालूम हुआ है कि जाति में वसिष्ठ और वत्स इन दोनों गोत्रों का अज्ञानवश परस्पर मिश्रण हो गया है, जिससे ५ प्रवर वाले भी अपना गोत्र वसिष्ठ बताते हैं और ३ प्रवर वाले भी बताते हैं, परन्तु ५ प्रवर वालों के यहा उनके पूर्व पुरुषों के हस्त-लिखित ग्रन्थों में प्रवरों के नाम भार्गव, च्यवन, आप्नवान, और्व, जामदग्न्य इन वत्सगोत्र के प्रवरों से मिलते-जुलते निकले तब निश्चय हुआ कि ये वत्सगोत्रीय हैं। चारों मडलों में जोशी, उपाध्याय और वोहरा अवटंक वाले ५ प्रवर रखते हैं, अतएव ये वत्सगोत्रीय हैं यह निश्चय होता है। आचार्य अवटंक वत्स तथा वसिष्ठ दोनों गोत्रों में है। वत्स गोत्रवालों के पाच प्रवर और वसिष्ठ गोत्र वालों के तीन प्रवर है। वसिष्ठ गोत्र के ५ प्रवर न तो किसी शास्त्र में हैं और न किसी जाति में

अब तक सुने गये हैं। गोत्रों के नाम तो अपभ्रंशवश परिवर्तित हो सकते हैं, परन्तु प्रवरों के अनुसार तो यज्ञोपवीत में गाठें होती हैं अतएव गाठें कोई नहीं भूल सकता। मालवा में वसिष्ठ गोत्र का पांडेय अवटंक भी है।

आमेटों के रावजी हीरालालजी से पूछा कि—वसिष्ठ गोत्र के ५ प्रवर आपकी पोथी में कैसे लिखे गये हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि ३ प्रवर तो पहले थे, परन्तु भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने पीछे से २ प्रवर और बख्शे हैं। यह रावजी की बात समझदार के मानने योग्य नहीं हैं। प्रवर वंश के प्रसिद्ध पुरुषों के नाम हैं, बख्शने की वस्तु नहीं है।

कुछ विद्वानों का मत है कि उपर्युक्त श्लोक में 'चन्द्रायणः' की जगह 'चन्द्रात्रयः' पाठ होना चाहिये ऐसा विशेष विचार करने से निश्चय होता है, क्योंकि इस गोत्र वाले साधारण पठित अपना गोत्र चन्द्रायती बताते हैं, यह 'चन्द्रायती' शब्द चन्द्रात्रेय शब्द का अपभ्रंश हो सकता है, चान्द्रायण का नहीं, एवं कडियां के शिलालेख में त्रिलोचन भट्ट की पत्नी तारादेवी के पीहर का गोत्र चन्द्रात्रेय लिखा है तथा झालावाड़-मंडल में से बहुत अधिक जातिबन्धुओं ने अपना गोत्र चन्द्रात्रेय लिखा है। इस संशोधन के अनुसार उपर्युक्त श्लोक का पाठ इस प्रकार होना चाहिये—

शाण्डिल्य-कौण्डिन्य-वसिष्ठ-कश्यपा-
श्चन्द्रात्रयः कौशिक-वत्स-गौतमाः।
गार्ग्यो भरद्वाज-पराशरौ चा-
लम्बायनश्चाङ्गिरसस्त्रयोदश ।

अब शंका यह शेष रहती है कि आमेटों में यदि चन्द्रात्रेय गोत्र ही था और चान्द्रायण नहीं था तो चान्द्रायण की कल्पना कैसे हुई? चन्द्रात्रेय और चान्द्रायण शब्द परस्पर के परिवर्तित रूप नहीं है। उपर्युक्त श्लोक बनाने वाला भी कुछ पठित और बहुश्रुत अवश्य था। बिना किसी आधार के चन्द्रायतो की जगह चान्द्रायण की कल्पना उसने स्वयं की हो यह सम्भव नहीं है। सोरमघाट तीर्थ (सूकरक्षेत्र) के पण्डे की वही में बहुत अधिक समय पूर्व से इन दोनों गोत्रों को आमेटा भिन्न २ लिखाते आये हैं। कुछ समय पूर्व तक मेवाड़ के सभी पठित अपना गोत्र चान्द्रायण ही बताते थे, चन्द्रात्रेय नहीं। अतएव आमेटों में चान्द्रायण गोत्र था नहीं, या है नहीं, ऐसा तो नहीं कह सकते। विशेष सम्भव यही है कि इन दोनों गोत्रों का परस्पर मिश्रण हो गया है, जैसा कि वत्स-वसिष्ठों का हो गया है। इनकी पृथक् २ पहिचान उनको हो सकेगी, जिनको वंश परम्परा से शुद्ध प्रवरों के नाम याद हैं या जिनको अन्वेषण करने पर अपने पूर्व पुरुषों की बनाई हुई या लिखी हुई पुस्तकों में अपने प्रवरों के शुद्ध नाम मिलें। इसके सिवा और कोई उपाय अब तक सूझा नहीं है। चन्द्रात्रेय और चन्द्रायण गोत्र के प्रवर आगे प्रवरों के प्रकरण में पाठक देखें।

चन्द्रात्रेय गोत्र तो केवल अत्रिवंश में ही है, परन्तु चान्द्रायण गोत्र भिन्न २ दो वंशों में है, जिसका स्पष्टीकरण यह है—

अंगिरा वंश में उत्पन्न संकृति नाम का ऋषि था, इसके वंश में जो चान्द्रायण है उसके प्रवर प्रवर-प्रकरण में दिखाये

हैं। दूसरा चान्द्रायण भृगुवंशज आर्ष्टिषेण के कुल में हुआ है। इसके प्रवर भार्गव, च्यवन, आप्नवान, आर्ष्टिषेण, आनूप ये पांच हैं। चन्द्रात्रेय और चान्द्रायण इन गोत्रों को भिन्न मानने में यह आपत्ति आती है कि आमेटों में तेरह गोत्र हैं इस प्रसिद्धि का भंग हो जाता है एवं तेरह पुतलों की कथा बताने वाली भाटों की ख्यात भी विरुद्ध हो जाती है, परन्तु ऐसी अप्रामाणिक दन्तकथाओं के आधार पर वर्तमान वस्तु का अपलाप करना उचित नहीं है।

मेवाड़-मंडल में से तो किसी भी चन्द्रात्रेय ने अपने प्रवरों के नाम लिखकर नहीं भेजे, परन्तु झालावाड़ और मालवा-मंडल में से कई जाति-बन्धुओं ने चन्द्रात्रेय गोत्र के प्रवर लिख भेजे हैं, जिनमें कुछ उदाहरण ये हैं—केसूर के भागीरथजी—तीन प्रवर आंगिरस, पलवाड़ा के माधूलालजी—तीन प्रवर आंगिरस, शुजालपुर के चन्द्रशेखरजी कुत्स वत्स चान्द्रायण, रामप्रसादजी—आत्रेय अर्चन सावित्वत, जीरापुर के रमाकान्तजी—वत्स कौत्स चान्द्रायण। इनमें से केवल रामप्रसादजी के लिखे प्रवरों में कुछ सत्य प्रवरों की झलक है। शेष प्रवर सभी गोलमटोल हैं। स्थूल अनुमान होता है कि जिन्होंने प्रवरों में आंगिरस का नाम लिखा है ये चान्द्रायणगोत्रीय हों, क्योंकि चान्द्रायण गोत्र के एक प्रवर का नाम आंगिरस है।

मेवाड़, झालावाड़ और मालवे के आमेटों में कौशिक-गोत्रीय अब तक मालूम नहीं हुए, परन्तु मारवाड़ के आमेटों में कौशिकगोत्रीयों की संख्या अच्छी है। मारवाड़ के बीजापुर, रामपुर और जयतो में कौशिकगोत्रीय जोशियों के बहुत घर हैं।

प्रवर

वर्तमान कल्प के कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, वशिष्ठ ये सात ऋषि एवं आठवें अगस्त्य इन आठ ऋषियों के कुलों में ही सब गोत्र-प्रवर्तक ऋषि हुए हैं, जिनकी संख्या इतनी बड़ी है कि इनकी गणना करना एवं इनके मूल पुरुष को पहिचानना कठिन है। अतएव उपर्युक्त आठ मूल पुरुषों की पहिचान के लिये प्रवरों का उपयोग होता है। क्योंकि प्रवरों की संख्या उनपचास ही है जिनसे मूल पुरुषों का परिचय पाने में बहुत बड़ा सौकर्य रहता है। यह इस निम्नलिखित वचन में स्पष्ट है —

गोत्राणां तु सहस्त्राणि प्रयुतान्यर्बुदान्यपि ।
ऊनपञ्चाशदेवैषां प्रवरा ऋषिदर्शनात् ।

जो ब्राह्मण श्रौत यज्ञों में अग्नि-वरण करते समय अपने वंश के जितने प्रतिष्ठित पुरुषों के नाम उच्चारण करते हैं, उनके उतने ही प्रवर माने जाते हैं, जैसे भरद्वाजगोत्रीय अंगिरोवत्, बृहस्पतिवत्, भरद्वाजवत् इस प्रकार तीन नामों का उच्चारण करते हैं, इसलिये इनके ये तीन प्रवर माने

भार्गव और केवल अंगिरस सप्त ऋषियों के वंशों से पृथक् हैं, अतएव ये गोत्र नहीं माने जाते हैं। इनमें विवाहोपयोगिनी कन्या का विचार प्रवरों के अनुसार किया जाता है।

आमेटों में जो गोत्र पहले बताये गये हैं उनके प्रवर इस प्रकार हैं —

गोत्रः—	प्रवरः—
१ शाण्डिल्य	शाण्डिल्य, असित, देवल
२ कौण्डिन्य	वासिष्ठ, मैत्रावरुण, कौण्डिन्य
३ वसिष्ठ	वासिष्ठ, इन्द्रप्रमद, आभरद्वसु
४ कश्यप	कश्यप, आवत्सार, नैध्रुव
५ चन्द्रात्रेय	आत्रेय, अर्चनानस, श्यावाश्व
६ चान्द्रायण	आंगिरस, गौरुवीत, सांकृत्य
७ कौशिक	विश्वामित्र, देवरात, औदल
८ वत्स	भार्गव, च्यवन, आप्नवान, और्व, जामदग्न्य
९ गौतम	आंगिरस, आयास्य, गौतम
१० गार्ग्य	आंगिरस, शैन्य, गार्ग्य
११ भारद्वाज	आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज
१२ पराशर	वसिष्ठ, शक्ति, पराशर
१३ आलम्बायन	वसिष्ठ, मैत्रावरुण, कौण्डिन्य
१४ आंगिरस	आंगिरस, अम्बरीष, यौवनाश्व

गोत्र और प्रवर जो वंश-परम्परा से चले आये हों वे ही यथार्थ समझे जाते हैं। यदि इनमें अज्ञानवश कुछ अप्रामाणिक परिवर्तन होगया हो तो प्रमाणों के आधार पर उसका संशोधन हो सकता है, परन्तु सर्वांश में परिवर्तन नहीं हो सकता है। गोत्रों में जो कुछ भूल मालूम हुई उसका प्रामाणिक संशोधन ऊपर दिखा दिया गया है। प्रवरों का यदि संशोधन किया जाय तो कैसे बनें, क्योंकि अनेक जातिबन्धुओं को तो प्रवरों के नाम ही याद नहीं हैं और कुछ को ऊटपटांग याद हैं। एक ही गोत्र के दो-तीन प्रकार के प्रवर धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में बताये गये हैं। इनमें कौनसा ग्राह्य है यह निर्णय तो वंश-परम्परागत प्रणाली नष्ट होजाने से हो नहीं सकता।

उपर्युक्त गोत्रों के जो प्रवर अधिक ब्राह्मणों में प्रसिद्ध हैं उनका ऊपर निर्देश किया गया है। फिर भी जिनके पास अपने पूर्वजों के बनाये हुए या लिखे हुए प्राचीन ग्रन्थों में अपने २ गोत्रों के धर्मशास्त्र-समत प्रामाणिक प्रवर मिलें तो वे उन्हें स्वीकार कर सकते हैं।

जिनके गोत्र और प्रवरों के नाम परस्पर मिलते हुए हों उनको परस्पर विवाह नहीं करना चाहिये यह धर्मशास्त्र का निर्णय है। इसके अनुसार परस्पर विवाह न करने योग्य गोत्रों का विवरण इस प्रकार है —

१ शाण्डिल्य का उन काश्यपों के साथ विवाह नहीं हो सकता जिनके प्रवर कश्यप, आवत्सार, नैध्रुव न होकर कश्यप, आवत्सार, असित हों।

२ कौण्डिन्य का विवाह वसिष्ठ, पराशर, आलम्बायन इतने गोत्रों में नहीं हो सकता।

३ वसिष्ठ का विवाह कौण्डिन्य, पराशर, आलम्बायन इतने गोत्रों में नहीं हो सकता।

४ काश्यप का विवाह यदि उसके प्रवरों में असित नाम हो तो शाण्डिल्य के साथ नहीं हो सकता है और असित के स्थान पर नैध्रुव नाम हो तो हो सकता है।

५ चन्द्रात्रेय का विवाह अपने अतिरिक्त सभी गोत्रों में हो सकता है।

६ चान्द्रायण का विवाह गौतम, गार्ग्य, भारद्वाज इन तीन गोत्रों में नहीं हो सकता है, 'केवल—आंगिरसों' में हो सकता है।

७ कौशिक का विवाह अपने अतिरिक्त सभी गोत्रों में हो सकता है।

८ वत्सगोत्रीय का विवाह अपने अतिरिक्त सभी उपर्युक्त गोत्रों में हो सकता है।

९ गौतमगोत्रीय का विवाह गार्ग्य और भारद्वाजों में नहीं हो सकता, 'केवल आंगिरसो' में हो सकता है।

१० गार्ग्य का विवाह गौतम और भारद्वाजों में नहीं हो सकता है, 'केवल आंगिरसो' में हो सकता है।

११ भारद्वाज का विवाह गार्ग्य गौतम और चान्द्रायणों में नहीं हो सकता, 'केवल आंगिरसो' में हो सकता है।

१२ पाराशर का विवाह वसिष्ट और आलम्बायन में नहीं हो सकता है।

१३ आलम्बायन का विवाह पराशर और वसिष्ट में नहीं हो सकता।

१४ आंगिरस का विवाह अपने अतिरिक्त सभी में हो सकता है।

अंगिरा के वंशजो में जो सप्त ऋषियों के अन्तर्गत नहीं हैं वे केवल आंगिरस कहे जाते हैं। उनमें और भार्गवों में यदि पांच प्रवर वाले हों तो तीन प्रवरों के नाम और तीन प्रवर वाले हों तो दो प्रवरों के नाम एक होने पर परस्पर विवाह के योग्य नहीं होते हैं, समान-प्रवर माने जाते हैं। सप्त-ऋषि और अगस्त्य इनके वंशजों में एक प्रवर का नाम समान मिलने पर भी परस्पर विवाह नहीं हो सकता। इन नियमों के अनुसार यह उपर्युक्त निर्णय लिखा है। अपने गोत्र में तो कभी कोई विवाह करते ही नहीं हैं यह प्रसिद्ध है।

वेद और शाखा

पहले ब्राह्मण चारों वेद पढ़ते थे, परन्तु पीछे के समय में बुद्धि दुर्बल हो जाने से तीन दो या एक पढने लगे। चारों वेद पढने वाले चतुर्वेदी, तीन वेद पढने वाले त्रिवेदी और दो वेद पढने वाले द्विवेदी कहलाये। एक वेद पढ़ना महत्वसूचक नहीं था, इसलिये एकवेदी किसी का भी उपनाम नही हुआ। कलियुग के प्रारम्भ में तो एक वेद को भी साङ्गोपाङ्ग पढ़ना दुष्कर हो गया, जिससे एक २ वेद की कई शाखाएँ हो गईं।

मेवाड़-मडल और झालावाड़-मडल में सभी आमेटा शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा पढनेवाले हैं। मालवा-मडल में और मारवाड़-मडल में सामवेद की कौथुमी शाखा के पढने वाले भी कुछ आमेटा हैं।

श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र।

शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिन शाखा पढनेवालों का कात्यायन श्रौतसूत्र और पारस्कर गृह्यसूत्र है। सामवेद की कौथुमी शाखा पढनेवालों का लाट्यायन श्रौतसूत्र और गोभिल गृह्यसूत्र है।

अवटक या उपाधि।

१ शाण्डिल्य —मेवाड़-मडल में इस गोत्र के अवटक जोशी और भट्ट हैं, परन्तु मारवाड़ में, पुरोहित शिलोड़ा और बोहरा है। झालावाड़ और मालवा में इस गोत्रवालों का अभीतक पता नहीं लगा।

२ कौंडिन्यः—मेवाड़ और झालावाड़ में इस गोत्र का अवटंक त्रिवेदी है, जिसका विगड़ा हुआ रूप त्रिवाड़ी है। परन्तु मारवाड़ में व्यास और त्रिवाड़ी दोनों हैं। झालावाड़ में त्रिवाड़ी और वोहरा हैं।

३ वसिष्ठः—मेवाड़ मालवा और मारवाड़ में इसका अवटंक आचार्य है, मालवा में कोई भट्ट हैं और कोई पाण्डेय हैं।

४ कश्यपः—इसके अवटंक जोशी उपाध्याय और वोहरा हैं।

५ चन्द्रात्रेयः—जोशी, व्यास, त्रवाड़ी, त्रवाड़ी-भट्ट और भट्ट इतने अवटंक इसमें हैं।

६ चान्द्रायणः—यह गोत्र अभी सन्देहग्रस्त है। अवटंकों का निर्णय नहीं हो सकता।

७ कौशिकः—इसका अवटंक मारवाड़ में जोशी है।

८ वत्सः—इसके जोशी, उपाध्याय, आचार्य और व्यास अवटंक हैं, मारवाड़ में वोहरा हैं।

९ गौतमः—इसके अवटंक उपाध्याय और भट्ट हैं, मारवाड़ में पारीख भी हैं।

१० गार्ग्यः—मारवाड़ में कटारिया और अन्यत्र द्विवेदी हैं।

११ भारद्वाजः—द्विवेदी भट्ट और गार्गी मेवाड़-मालवा में, और मारवाड़ में भंडारी हैं।

१२ पाराशरः—मारवाड़ में कंठ और अन्यत्र पराशरी है।

१३ आलम्बायन —मेवाड़ में जोशी और भट्ट हैं, किन्तु मारवाड़ में उपाध्याय हैं।

१४ आंगिरस.—मेवाड़ में त्रिवाड़ी हैं, परन्तु मारवाड़ में पालीवाल हैं।



सापिण्ड्य-विचार

जैसे गोत्र प्रवरों का एक होना विवाह में बाधक है इसी प्रकार कन्या का वर के सपिण्डों में होना भी विवाह का बाधक है। अतएव धर्म-शास्त्र के अनुसार यहां सपिण्ड-विचार किया जाता है।

पिण्ड शब्द का अर्थ शरीर और मृत पुरुषों को दिया जाने वाला अन्न का गोला दोनों है। इन दोनों का जितनी पुश्तों तक सम्बन्ध बना रहता है उतनी पुश्तों तक की सतति सपिण्डों के अन्तर्गत मानी जाती है। माता-पिताओं के रज-वीर्य द्वारा उनके शरीरों के अंश संतानों में प्रविष्ट होते हैं। पुत्र-पुत्री के द्वारा पौत्र दौहित्रों में एव उनके द्वारा उत्तरोत्तर सतति में अनुवृत्त होते हैं। वीर्य के द्वारा सतानों के अस्थि, स्नायु और मज्जा बनते हैं, जो पित्र्य, अंश है। रज के द्वारा सतान के त्वचा, मास और रुधिर बनते हैं, जो माता का अंश है। यह मूल पुरुष के वीर्य के सबन्ध का प्रभाव उसके वंश में सात पुश्तों तक रहता है, इसलिये सात पुश्तों तक के सभी वंशज उसके सपिण्ड यानी शरीर

सम्बन्धी माने जाते हैं। मूल स्त्री के रज का प्रभाव उसके वंशजों में पांच पुश्तों तक रहता है, इसलिये पांच पुश्तों तक के वंशज उसके सपिण्ड यानी शरीर-सम्बन्धी माने जाते हैं। इसी प्रकार मृत सम्बन्धियों को जो पिण्ड दिये जाते हैं उनके द्वारा भी आपस में सात पुश्तों तक सम्बन्ध जुड़ जाता है। पिण्ड देने वाला पिता, पितामह, प्रपितामह इन तीनों को पिण्ड देता है। पिण्ड बांधने के समय जो पिंड का अंश हाथों में चिपक जाता है उसे लेप कहते हैं। यह लेप परदादाजी के ऊपर की तीन पीढ़ियों को दिया जाता है और देने वाला ७ वां है। इस प्रकार पिण्डों के लेन-देन की क्रियाओं से भी सात पुश्तों तक सम्बन्ध जुड़ जाता है।

पति-पत्नी यद्यपि भिन्न २ वंशों के होते हैं, परन्तु विवाह संस्कार के मंत्रों द्वारा उनकी एकता हो जाती है, एवं पत्नी पति के गोत्र की बन जाती है। देवरानी-जिठानी भी भिन्न २ कुलों से आई हुई होती हैं, परन्तु इनके पतियों के शरीर एक पुरुष के वीर्य द्वारा उत्पन्न होने से अभिन्न हैं और उन शरीरों के साथ अभिन्नता विवाह-संस्कार के द्वारा इन्होंने प्राप्त की हैं, इसलिये ये भी परस्पर सपिण्ड हो जाती हैं।

अपने गोत्र में विवाह करने का निषेध है, इसलिये अपने गोत्र के सपिण्डों में तो कभी विवाह करने की आपत्ति आती नहीं है, परन्तु अन्यगोत्रीय सपिण्डों में प्रमादवश विवाह-सम्बन्ध हो जाना संभव है, अतएव सापिण्ड्य प्रक्रिया समझाने के लिये यहां कुछ उदाहरण दिखाये जाते हैं—

उदाहरण १

१ विष्णुराम (मूलपुरुष) १

२ गंगाधर (पुत्र)	२ गौरीबाई (कन्या)
३ शुकदेव (पुत्र)	३ हरलाल (पुत्र)
४ रामचन्द्र (पुत्र)	४ माधवलाल (पुत्र)
५ चैनशंकर (पुत्र)	५ शिवलाल (पुत्र)
६ गणेशीबाई (कन्या)	६ भवरलाल (पुत्र)
७ माणिकबाई (कन्या)	७ अर्जुनलाल (पुत्र)
८ तुलसीबाई (कन्या)	८ कृष्णलाल (पुत्र)

यहाँ तुलसी नाम की कन्या का कृष्णलाल के साथ विवाह हो सकता है। कारण, मूलपुरुष विष्णुराम से दोनों सात पीढ़ी बाद आठवीं पीढ़ी में हैं, जहां सपिण्डता बन्द हो जाती है।

उदाहरण २

१ विष्णुराम (मूलपुरुष) १

२ गंगाधर (पुत्र)	२ हरलाल (पुत्र)
३ शुकदेव (पुत्र)	३ माधवलाल (पुत्र)
४ रामचन्द्र (पुत्र)	४ शिवलाल (पुत्र)
५ तुलसीबाई (कन्या)	५ रमाबाई (कन्या)
६ शिवशंकर (पुत्र)	६ गौरीबाई (कन्या)

यहाँ शिवशंकर का गौरीवाई के साथ विवाह हो सकता है, कारण शिवशंकर की माता तुलसी तक पांच पीढ़ी हो जाने से सपिण्डता रुक जाती है। इसी प्रकार गौरीवाई की माता रमावाई तक पांच पीढ़ी हो जाने से विवाह हो सकता है।

उदाहरण ३

१ विष्णुराम (मूलपुरुष) १

२ गंगाधर (पुत्र)	२ हरिवल्लभ (पुत्र)
३ शुकदेव (पुत्र)	३ माणिकलाल (पुत्र)
४ रामचन्द्र (पुत्र)	४ माधवलाल (पुत्र)
५ श्यामावाई (कन्या)	५ नर्मदावाई (कन्या)
६ शिवशंकर (पुत्र)	६ कृष्णावाई (कन्या)
७ रमावाई (कन्या)	७ शिवलाल (पुत्र)

यहाँ शिवलाल की माता के पक्ष से सपिण्डता रुक जाने पर भी अर्थात् माता की ओर से पाँच पीढ़ी हो जाने पर भी रमा के पिता के पक्ष से सपिण्डता रुकी नहीं है अर्थात् सात पीढ़ी हो हुई हैं इसलिये रमावाई के साथ शिवलाल का विवाह नहीं हो सकता।

उदाहरण ४

१ विष्णुराम (मूलपुरुष) १

२ गगाधर (पुत्र)	२ हरिवल्लभ (पुत्र)
३ शुकदेव (पुत्र)	३ माणिकलाल (पुत्र)
४ रामचन्द्र (पुत्र)	४ माधवलाल (पुत्र)
५ श्यामाबाई (कन्या)	५ शिवशंकर (पुत्र)
६ शान्तिबाई (कन्या)	६ हरलाल (पुत्र)

यहाँ शान्तिबाई का विवाह हरलाल के साथ नहीं हो सकता। कारण, शान्ति की माता के पक्ष से सपिण्डता रुक जाने पर भी हरलाल के पिता के पक्ष से नहीं रुकी है।

संस्कार

स्मृतिकारों ने संस्कार ४८ तक बताये हैं, परन्तु उनमें से १६ सस्कार करने की प्रथा भारतवर्ष के प्रतिष्ठित धर्म-प्रेमी वंशों में प्रचलित है। किन्तु आमेटा जाति का बहुत अधिक भाग छोटे २ गावों में बसा हुआ है, जहाँ शिक्षा के साधन नहीं हैं, न योग्य कर्मकाण्डी शुक्र ही मिलते हैं। अतएव ऐसे प्रदेशों में गर्भाधान, पुसवन सीमन्त आदि सस्कारों की शास्त्रीय विधिया लुप्त हो गई हैं। केवल उपवीत और विवाह ये दो सस्कार ही होते हैं। इनमें भी कदाचित् भूल या अनास्था के कारण कमी या विपरीत विधि न हो जावे इस उद्देश्य से इनकी शास्त्रशुद्ध स्थूल विधि (तरीका) यहाँ बताई जाती है।

१–यज्ञोपवीत

गर्भ से या जन्म से ८ वें वर्ष में, उत्तरायण में, वसन्त ऋतु में, विशेष कर चैत्र में मीनसंक्रान्ति में, ब्राह्मण-बालक का यज्ञोपवीत संस्कार करना उत्तम होता है। यदि ८ वर्ष तक नहीं हो सके तो इससे दूना समय अर्थात् १६ वर्ष तक यज्ञोपवीत संस्कार का गौण समय है। इसके बाद भी यज्ञोपवीत संस्कार न किया जाय तो ब्राह्मण बालक पतित हो जाते हैं, व्रात्यस्तोम यज्ञ करने पर ये यज्ञोपवीत ग्रहण करने योग्य बन सकते हैं।

जो द्विजातिगण पुत्र या कन्या के विवाह के साथ बालकों का यज्ञोपवीत संस्कार करते हैं, उनमें अधिकांश विवाह का ही मुहूर्त देखते हैं। यज्ञोपवीत विवाह के दो चार दिन पूर्व या उसी दिन अष्टमी, प्रतिपदा, अमावास्या, रिक्ता तिथि, गलग्रह, प्रदोष, अपराह्ण आदि का कुछ भी विचार न करते हुए कर देते हैं। यह अत्यन्त ही अनुचित है। ज्यौतिष शास्त्र में जो समय यज्ञोपवीत के लिये अत्यन्त निषिद्ध है उसमें किया यज्ञोपवीत वृथा है। पुनर्यज्ञोपवीत होना चाहिये। ग्रहशान्ति और यज्ञोपवीत दोनों एक दिन करना भी अनुचित है। ग्रहशान्ति में इतना समय खर्च होता है कि यज्ञोपवीत संस्कार के समय अपराह्ण आजाता है, जो शास्त्र-दृष्टि से अत्यन्त निषिद्ध है।

बालक-बालिकाओं के यज्ञोपवीत-विवाह-आदि संस्कार करने का अधिकार पिता, पितामह, बड़ा भाई और निकट सपिण्ड-सगोत्र-सम्बन्धी इनमें से पूर्व २ के अभाव में पीछे वाले को है, परन्तु व्यवहार में ऐसा देखा जाता है कि पिता

की मौजूदगी में भी पितामह, बड़ा भाई आदि बालक बालिकाओं के यज्ञोपवीत विवाह आदि संस्कार करते हैं। यज्ञोपवीत में प्रधानकर्म जो गायत्री का उपदेश है, अधिक कुटुम्बों में, यह कार्य गुरु, पुरोहित, उपाध्याय आदि भिन्न-जातीय भिन्नगोत्रीय पुरुषों के द्वारा कराया जाता है। यह अत्यन्त ही अनुचित है। भारतवर्ष की उच्च-शिक्षिता दाक्षिणात्य, मैथिल आदि जातियों में उपर्युक्त अधिकारियों के द्वारा ही संस्कार किये जाते हैं और इसके विरुद्ध करना अत्यन्त निषिद्ध माना जाता है।

जिस दिन यज्ञोपवीत करना हो उस दिन प्रात काल बालक का मुण्डन कराया जावे। बाद में तीन ब्राह्मण एवं बालक को भोजन करावे। मण्डप में गणपति-मातृका-पूजन नान्दीश्राद्ध कर यथाविधि अग्नि-स्थापन करने के बाद अग्नि के पश्चिम में और आचार्य के दक्षिण में बालक बैठाया जावे। आचार्य बालक को ब्रह्मचर्य स्वीकार कराने के अनन्तर समन्त्र वस्त्र, मेखला, यज्ञोपवीत, मृगचर्म एवं दण्ड-धारण करावे। आचार्य जल से अपनी अञ्जलि भर कर उससे बालक की अञ्जलि भरे और सूर्य के दर्शन के लिये बालक को प्रेरणा करे। बालक सूर्य दर्शन करता हुआ जलकी अञ्जलि सूर्य के अर्पण करदे। आचार्य बालक के दक्षिण कन्धे पर से हाथ आगे बढ़ाकर मन्त्र बोलता हुआ बालक के हृदय का स्पर्श करे। अंगुष्ठ-सहित दक्षिण हाथ पकड़ कर 'क्या नाम है? किसका ब्रह्मचारी है?' इन प्रश्नों का उत्तर बालक से प्राप्त करे। प्रश्नोत्तर सभी संस्कृत में हों। फिर 'प्रजापतये त्वा परिददामि' मन्त्र से बालक का प्रजापति, सविता आदि देवों को दान करे। बालक अग्नि की प्रदक्षिणा कर आचार्य

के उत्तर में वैठे। आचार्य ब्रह्मोपवेशन से लेकर पर्युक्षण पर्यन्त कुशकण्डिका का अवशेष पूरा करे। आघार से लेकर स्विष्टकृत् पर्यन्त १४ आहुतियां होम कर होम से शेष रहे घृत का प्राशन करे (मुँह में डाले)। ब्रह्मा के लिये पूर्ण पात्र या वर देवे। फिर ब्रह्मचारी वालक को उसके कर्तव्य-अशुद्ध होने पर आचमन करना, दिन में न सोना, बोलने का संयम रखना, प्रतिदिन अग्नि में समिधाओं का प्रक्षेप करना आदि की शिक्षा देवे। अग्नि के उत्तर भाग में यथाविधि गुरु के चरणों का स्पर्श कर भक्तिपूर्वक सामने वैठे हुए पश्चिम-मुख ब्रह्मचारी के कान में गायत्री मंत्र का तीन वार उपदेश करे। पहली वार तीनों चरण अलग २ सुनावे। दूसरी वार 'ह' पर्यन्त का आधा भाग और तीसरी वार सम्पूर्ण सुनावे।

यज्ञोपवीत देने के अधिकारी वालक के पिता, भ्राता आदि और कुछ न कर सकते हों तथापि वालक के लिये गायत्री-मंत्र का उपदेश अवश्य करें।

इसके अनन्तर ब्रह्मचारी अग्नि के पास पूर्वाभिमुख वैठ कर 'अग्ने सुश्रवः' इत्यादि पांच मंत्रखण्डों से अग्नि को प्रज्वलित करने के लिये अग्नि में इन्धन प्रक्षेप करे (लकड़ी डाले)। राजपूताना में शिष्टाचार आरण्यक कण्डों के टुकड़े डालने का है। फिर जल से अग्नि का पर्युक्षण कर खड़ा होकर ब्रह्मचारी 'अग्नये समिधमाहार्षम्' मंत्र से एक २ कर तीन समिधाएं अग्नि में रखे। फिर वैठकर 'अग्ने सुश्रवः' इत्यादि पांच मंत्रखण्डों से अग्नि में फिर इन्धन प्रक्षेप करे। वाद में जल से अग्नि का पर्युक्षण कर अग्नि में दोनों हाथ गरम कर 'तनूपा अग्नेसि' इत्यादि

मन्त्रों से मुख का स्पर्श करे। 'अंगानि च मे' इस मन्त्र से शिर से लेकर चरण पर्यन्त सब अंगों का स्पर्श करे। 'वाक् च मे आप्यायताम्' इत्यादि ४ मन्त्रों से मंत्रोक्त अङ्गों का स्पर्श करे। अन्त में 'यशो बल च म आप्यायताम्' यह पढ़े। अनामिका अगुलि से अग्नि की भस्म लेकर 'त्र्यायुष' मन्त्र के चार खण्डों से ललाट, ग्रीवा, दाहिना कंधा, हृदय, इन चार स्थानों में लगावे। ब्रह्मचारी गुरु का अभिवादन कर भिक्षा मांगे। प्रथम माता से भिक्षा लेकर फिर अन्य स्त्रियों से भिक्षा लेनी चाहिये। भिक्षा गुरु के अर्पण कर शेष दिन बन सके तो मौन से व्यतीत करे। सायंकाल में सन्ध्या वदन कर 'अग्ने सुश्रव' 'अग्नये समिधम्' इत्यादि मन्त्रों से पूर्वोक्त रीति के अनुसार होम कर मौन का त्याग करे।

वर्तमान समय में एक ही दिन में वेदारम्भ आदि सब कार्य पूर्ण करने की प्रथा है। इसलिये शेष दिन में मौन न रखकर वेदारम्भ करना उचित है।

पृथक् स्थण्डिल बना कर उस पर यथाविधि अग्नि-स्थापन कर कुशकण्डिका की समाप्ति में प्रत्येक वेद की दो आहुतियां 'पृथिव्यै स्वाहा, अग्नये स्वाहा, अन्तरिक्षाय स्वाहा, वायवे स्वाहा, दिवे स्वाहा, सूर्याय स्वाहा, दिग्भ्य स्वाहा, चन्द्रमसे स्वाहा' इस प्रकार देकर अनन्तर 'ब्रह्मणे स्वाहा, छन्दोभ्य स्वाहा' ये दो आहुतियां देवें। 'प्रजापतये स्वाहा' से 'अनुमतये स्वाहा' पर्यन्त ७ आहुतियां सर्व-साधारण है। फिर 'ॐ भू स्वाहा' से 'ॐ स्विष्टकृते स्वाहा' तक आहुतियाँ पूर्ण कर संस्रव-प्राशन आदि अन्तिम विधियाँ पूर्ण करे। आचार्य इतना कार्य पूर्ण कर ब्रह्मचारी

से वेदारम्भ करावे। प्रथम ब्रह्मचारी अपने वेद का पढ़ना आरम्भ करे। बाद में ऋग्वेद के क्रम से अन्य वेद पढ़े। आरम्भ में प्रणव-व्याहृति-सहित गायत्री का उच्चारण कर फिर वेद-मंत्र पढ़ना प्रारम्भ करे।

ब्रह्मचारी रह कर नियमपूर्वक वेद पढ़ना चाहे तो कौपीन (लंगोट), कटिसूत्र (कंदोरा), मेखला (तेवड़ा मूंज की डोरी, यज्ञोपवीत के समान गांठवाली कमर में लपेटी हुई) मृगचर्म, दण्ड और यज्ञोपवीत सर्वदा धारण करें। पृथ्वी पर शयन करे (खाट पर न सोवे)। क्षार पदार्थ सेवन न करे। प्रातःकाल सायंकाल दो बार भिक्षा लाकर गुरु के लिये निवेदन कर अनुमति प्राप्त कर भोजन करे। शहद और मांस न खावे। जलाशय से जल बाहर निकाल कर स्नान करे। उबटन, आंखों में काजल न लगावे। कामवासना से दूर रहे। गंदी बातें न करें। जूतियां, छाता और काच का उपयोग न करे। पान न खावे। यदि औषधि के रूप में पान, शहद, खारे पदार्थ उपयोग में लाने की आवश्यकता हो तो गुरु को भोजन करा कर उसका उच्छिष्ट प्रसाद के रूप में लेना चाहिये।

यद्यपि समावर्तन, आरम्भ किये हुए वेदों को यथाविधि पूर्ण पढ़कर जब ब्रह्मचर्य-व्रत की समाप्ति करना हो तब, किया जाता है, परन्तु वर्तमान समय में ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करना कठिन समझ कर यज्ञोपवीत के दिन या कुछ दिन बाद ही समावर्तन कर लेते हैं। यह ठीक भी है। ब्रह्मचर्य के भंग करने की अपेक्षा अनाश्रमी रहने में अल्प दोष है।

जो होम वेदारम्भ में होता है वही समावर्तन में भी करना चाहिए। इसकी समाप्ति में ब्रह्मचारी आचार्य को अभिवादन कर 'अग्ने सुश्रव' इत्यादि मंत्रों से इन्धन प्रक्षेप और समिदाधान पूर्ववत् करे। फिर होम-प्रदेश के उत्तर में आठ जल-कुम्भों से ब्रह्मचारी का अभिषेक किया जावे।

अभिषेक समाप्त होने पर मेखला आदि का त्याग कर वस्त्र, अलंकार, जूतियां, छाता, बांस की लकड़ी आदि स्नातक-वेष मंत्रों के साथ धारण करे।

राजपूताना के अधिक भागों में तो गायत्री उपदेश और भिक्षाचरण पर्यन्त की ही विधि करते हैं। भिक्षा के बाद बालक को काशी पढ़ने भेजने का अभिनय करते हुए कुछ दूर दौड़ाते हैं (यह काशी जाकर वेद पढ़ने की शकल है)। फिर बालक का मामा उसे पकड़ कर ले आता है और वस्त्र-अलंकार पहिना देता है। वस्त्रालंकार-धारण समावर्तन की समाप्ति का सूचक है। वस्तुतः वेदारम्भ समावर्तन आदि कुछ भी नहीं करते हैं। यह अविद्या का विलास है। भूदेव विवेक से काम लें तो अच्छा है।

२—विवाह

कामवासनामय कर्तव्य को विशुद्ध नियमित नया रूप देकर धर्म के सांचे में ढालनेवाला एक महत्वपूर्ण वैदिक संस्कार है।

स्मृतियों के अनुसार विवाह ८ प्रकार का माना गया है। (१) ब्राह्म (२) दैव (३) आर्ष (४) प्राजापत्य (५) आसुर (६) गान्धर्व (७) राक्षस (८) पैशाच।

इनमें आमेटा जाति में ब्राह्म-विवाह का ही विशेष प्रचार है। कुछ लोग लोभवश अब आसुर और राक्षस विवाह भी करने लग गये हैं। इनके लक्षण इस प्रकार हैं:—

१—किसी विद्वान् कुलवान् बालक को बुलाकर वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित-कन्या दी जाय, उसको ब्राह्म विवाह कहते हैं।

२—कन्या के लोभी सम्बन्धियों को धन दे कर जो विवाह किया जाता है, उसको आसुर विवाह कहते हैं।

३—जबरदस्ती छीन कर रोती बिलखती कन्या के साथ विवाह करना राक्षस विवाह है।

आसुर और राक्षस विवाह से विवाहिता स्त्री में उत्पन्न हुआ पुत्र पिता के गोत्र का नहीं होता, किन्तु नाना के गोत्र का होता है और उसके आगे के वंश में सारा गोत्र बदल जाता है। ऐसा पुत्र सगोत्र-पुत्र के समान पिण्डदान का अधिकारी नहीं होता है।

विवाह एक जाति में होना चाहिये, परन्तु सपिण्ड में अर्थात् एक ही कुटुम्ब एक ही गोत्र और समान प्रवर में नहीं होना चाहिये।

विवाह के लिये चैत्र को (मीन संक्रान्ति को) छोड़ कर और सभी उत्तरायण के मास उपयोगी हैं। दक्षिणायन में भी वृश्चिक संक्रान्ति विवाह के लिये उपयोगी है। यह विचार ब्राह्म विवाह के लिये है, जिसका लक्षण पहले बताया है। आसुर, गान्धर्व, पैशाच और राक्षस इन निषिद्ध विवाहों के लिये समय-विचार की आवश्यकता नहीं है। 'धर्म्येषु विवाहेषु काल-परीक्षणं नाधर्म्येषु' ऐसा गृह्य-

परिशिष्ट में लिखा है। ब्राह्म आदि धार्मिक विवाहों के समय के लिये भी ज्यौतिष की अपेक्षा धर्मशास्त्र अधिक उदार है। चातुर्मास्य में भी विवाह करने की क्षत्रियों में प्रथा है। इसके सर्वप्रथम प्रारम्भ में भी यह धर्मशास्त्र की उदारता ही कारण रही होगी।

विवाह का अङ्गी प्रधान कर्म जिसके लिये लग्न निश्चित किया जाता है, वर-कन्याओं का पारस्परिक समञ्जन ('समञ्जन्तु विश्वे देवा' इस मन्त्र से किया जाने वाला मेलन) और कन्यादान है। अतएव कन्यादान के पूर्व अन्त पट रक्खा जाता है और जब तक लग्न-समय न आवे मङ्गलश्लोक बोलकर समय व्यतीत किया जाता है। विवाह के मुहूर्त में यह प्रधान कार्य हो जाने के बाद शेष कार्य उसी समय साथ २ या उसी दिन दूसरे समय में या अन्य किसी साधारण शुभ दिन में कर सकते हैं। शेष कार्य के लिये विवाह-मुहूर्त की आवश्यकता नहीं है। वैष्णव गोस्वामियों में और मालवा के त्रिवाड़ी-मेवाड़ा ब्राह्मणों में शेष विवाह कार्य (विवाह होम आदि) कुछ दिन बाद भी करते हैं ऐसा देखा गया है।

ज्योतिस्तत्त्व और हेमाद्रि इन दो ग्रन्थों के अनुसार केवल कन्या-दान (सम्पूर्ण विवाह-विधि नहीं) रात्रि में ही करना श्रेष्ठ माना गया है। राजपूताना में विशेषत मेवाड़ में इस उपर्युक्त प्रमाण के सहारे सम्पूर्ण विवाह-विधि रात्रि में ही पूर्ण करना आवश्यक मानते हैं, परन्तु इतना अधिक रात्रि का आग्रह सर्वशास्त्र-सम्मत नहीं है। हेमाद्रि के अतिरिक्त सभी धर्मशास्त्र-ग्रन्थों में दिन में विवाह करना श्रेष्ठ बताया है। माध्यन्दिन शाखा वालों के कर्मकाण्ड का

मूल प्रमाणभूत ग्रन्थ पारस्कर गृह्यसूत्र है, उसमें अग्नि-प्रदक्षिणा और अभिषेक के अनन्तर वधू को सूर्य-दर्शन कराने का विधान है। 'अथैनां सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति'। कदाचित्-विवाह लग्न अपराह्न में हो, और विवाह करते करते सूर्य अस्त हो जाय तो 'अस्तमिते ध्रुवं दर्शयति' इस सूत्र से ध्रुव-दर्शन कराने का विधान है। इससे मालूम होता है कि कम से कम माध्यन्दिन शाखा वालों के लिये तो दिन में विवाह करना ही प्रधान है। कदाचित् दिन में न बने तो रात्रि के प्रथम प्रहर में करना फिर भी अनुचित नहीं है। शेष रहे दिन के कार्य रात्रि के प्रथम प्रहर में करना धर्मशास्त्र-सम्मत है। प्रथम प्रहर तक कार्यकर्ताओं की शरीर-शुद्धि, देवपूजा की अनुकूलता आदि सभी रह सकता है। रात्रि के १० बजने के अनन्तर का और पिछली रात्रि के ४ बजने से पूर्व का रात्रिभाग तो सभी धर्मकार्यों के लिये अत्यन्त निषिद्ध है। ऐसे समय में तो लंकावासी धर्मकार्य करते थे। हनुमान्‌जी ने लंका में अर्धरात्रि के समय राक्षसों का वेदघोष सुना था। मलात्याग, निद्राआदि से अपवित्र हो कर विना स्नान किये ऐसे निषिद्ध समय में अर्धनिद्रित अवस्था में विवाह-जैसा पवित्र वैदिक संस्कार करना महर्षि-सन्तानों को शोभा नहीं देता है। सनातन धर्मी जरा विवेक से काम लें।'

पहले यज्ञोपवीत संस्कार में करने के अधिकारी बताये गये हैं, वे ही विवाह में कन्यादान करने के भी अधिकारी हैं, परन्तु पराई कन्या को धन से खरीद कर दान करने का भी धर्मशास्त्र में उल्लेख है। विना धन दिये भी यदि कोई अपनी कन्या को पुत्रीरूप में दे दे तो उसका भी कन्यादान दूसरा कर सकता है।

विवाह में वाग्दान, मृत्तिकाहरण मण्डपप्रतिष्ठा आदि अनेक पूर्वोत्तराङ्ग हैं, जिनका अनुष्ठान भिन्न २ प्रदेशों में कहीं व्यस्त रूप में एव कहीं कुछ परिवर्तित रूप में किया जाता है। इन सब को यहाँ समालोचना करना विस्तार-भय से सभव नहीं है। यहाँ विवाह का प्रधान अंश, जो कि मधुपर्क-पूजा से चतुर्थी कर्म तक है, इस पर ही कुछ लिखना उचित समझता हूँ।

वर जब घोड़ी पर सवार होकर कन्या-पिता के द्वार पर जाता है तब अन्तरिक्षचारी प्राणियों की बाधा एव दृष्टिदोष के वारण के लिये कन्यापक्ष की स्त्रियां द्वार पर आकर पुखना (लोकाचार) करती हैं एव नीराजन (आरती) उतारती हैं। बाद में वर भीतर जाकर मण्डप में पूर्वाभिमुख बैठता है। यहीं मधुपर्कपूजा की जाती है।

प्रारम्भ में कन्या-पिता वर को आसन पर बैठा कर वर से उसके पूजन की अनुमति 'साधु भवान्' इत्यादि वाक्य बोल कर प्राप्त करे। फिर कन्या-पिता २५ कुशों को तिहरे कर सिरे पर ग्रन्थि लगाकर बनाये गये प्रादेश-परिमाण (१० अंगुल) विष्टर को अपने हाथ में लेवे। कोई अन्य ब्राह्मण 'विष्टर' शब्द का तीन बार उच्चारण करे तब कन्या-पिता 'प्रतिगृह्यताम्' कह कर विष्टर वर के लिये दे। वर उसे 'वर्ष्मोऽसि' मन्त्र से आसन पर रखकर बैठ जावे। इसी प्रकार कोई दूसरा 'पाद्य' शब्द का तीन बार उच्चारण करे, तब कन्या-पिता पाद धोने के जलके पात्र को वर के लिये देवे। वर उस पात्र को भूमि पर रख कर अञ्जलि से उसमें से जल ले कर प्रथम अपने दक्षिण और फिर वाम चरण को धोवे। वर्तमान समय में कन्या-पिता

वर के पांव धोता है, परन्तु यह शास्त्र-संमत नहीं है। पांव धोने के समय वर 'विराजो दोहोसि' मंत्र पढ़े। वर यदि ब्राह्मण न हो तो पहले बायां पांव और बाद में दायां पांव धोवे। किसी दूसरे के द्वारा 'विष्टर' शब्द का तीन बार उच्चारण होने पर कन्या-पिता फिर दूसरा विष्टर वर के लिये 'प्रतिगृह्यताम्' कह कर देवे। वर 'वर्ष्मोऽसि' मंत्र से विष्टर लेकर पांवों के नीचे रक्खे। कन्यापक्षीय पुरुष के द्वारा 'अर्घोऽर्घोऽर्घः' इस प्रकार तीन बार उच्चारण करने पर कन्यापिता 'प्रतिगृह्यताम्' कहकर वर के लिये अर्घ्य देवे। वर अर्घ्य ग्रहण करता हुआ 'आपः स्थ युष्माभिः' मंत्र बोले। एवम् अर्घ्य-पात्र मस्तक पर्यन्त ले जा कर वन्दन कर 'समुद्रं वः प्रहिणोमि' मंत्र पढ़ता हुआ पूर्व या उत्तर की ओर किसी का पांव न पड़े ऐसे स्थान पर रख दे। 'आचमनीयम्, आचमनीयम्, आचमनीयम्' ऐसे तीन बार अन्य पुरुष के द्वारा उच्चारण होने पर कन्या-पिता वर के लिये आचमन का जल देवे। वर 'आमागन्' मंत्र से आचमन कर फिर 'ॐ केशवाय नमः' इत्यादि मन्त्रों से तीन आचमन करे। कन्या-पिता दही, शहद और घृत तीनों एक काँसी के कटोरे में रखकर ऊपर दूसरा काँसी का कटोरा ढाँके। 'मधुपर्कः' शब्द का तीन बार अन्य पुरुष के द्वारा उच्चारण होने पर 'प्रतिगृह्यताम्' कहकर अपने हाथ में रखा हुआ मधुपर्क-पात्र वर को दिखावे। वर ऊपर का ढक्कन अलग कर 'मित्रस्य त्वा' मंत्र पढ़ता हुआ दोनों हाथों से उसे लेवे। फिर मधुपर्क-पात्र बायें हाथ में लेकर दक्षिण हाथ की अनामिका अंगुलि को तीन बार उसमें घुमाकर मिलावे। अंगुलि घुमाने के साथ 'नमः श्यावास्या' मंत्र पढ़ता रहे एवं प्रत्येक घुमाने

के अन्त में अनामिका और अगुष्ठ से लेकर दही, शहद, घी का कुछ भाग बाहर भूमि पर डाले। 'यन्मधुनो' मत्र पढ़ता हुआ वर तीन बार अनामिका-अगुष्ठ से मिला हुआ दही लेकर चक्खे। शेष रहा हुआ, उच्छिष्ट का अधिकारी शिष्य वगैरा मोजूद हो तो, उसे देदे। मौजूद न हो तो स्वय सब खाजावे या पूर्व की ओर किसी का पॉव न पड़े ऐसे स्थान पर रख दे। फिर उच्छिष्ट-शुद्धि के लिये तीन आचमन कर 'वाङ् म आस्येऽस्तु' इत्यादि मन्त्रों से मुख, नासिका, नेत्र, कान, भुजा, जाघों का स्पर्शकर 'अरिष्टानि मेङ्गानि' मन्त्र से दोनों हाथों से मस्तक से चरण पर्यन्त सब अङ्गों का स्पर्श करे। दूसरे पुरुष के द्वारा 'गौ' शब्द का ३ बार उच्चारण होने पर हाथ में दर्भ लेकर वर 'माऽऽलभ्यताम्' कहने के बाद 'माता रुद्राणाम्' मन्त्र पढकर अन्त में 'पाप्माहत ॐ' कहे, एव 'उत्सृजत तृणान्यत्तु' कहे। मधुपर्क के लिये कुछ वस्त्राभूषण देने की प्रथा है।

घर मडप के नीचे कुलदेवी मन्दिर से निकलते हुए बाईं ओर तैयार की गई चार हाथ समचौरस, एक हाथ ऊँची विवाह वेदि पर या भूमि पर होम के लिये बनाये गये एक हाथ समचौरस, चार अगुल ऊँचे स्थण्डिल पर परिसमूहनादि पञ्च-भूसस्कार कर अग्नि स्थापन करे। अग्नि के पश्चिम म छोटीसी चटाई रक्खे। अग्नि-स्थापन के अनन्तर वर के लिये कन्या-पिता दो वस्त्र वर के पहिनने के एव दो कन्या के पहिनने के ऐसे चार वस्त्र दक्षिणा सहित देवे।

वर्तमान समय में धोती-उपरना, पगड़ी-अगरखा, रुपया

नारियल, इनमें से शक्त्यनुसार कुछ कन्या-पिता वर के लिये देता है।

वर पहले दो वस्त्र 'जरां गच्छ' 'या अकृन्तन्' इन मंत्रों से कन्या को पहिनावे और बाद में दो वस्त्र 'परिधास्ये' 'यशसा' इन दो मन्त्रों से वर स्वयं पहिने। वर्तमान व्यवहार के अनुसार जिनके यहाँ वर-कन्या पहले से ही विवाह-योग्य वस्त्र पहिने हुए हों उनके यहाँ वर को इन मंत्रों का पाठ कर लेना चाहिये। बाद में बीच में अन्तःपट रख कर वर के सामने कन्या को लाकर बैठावे। जब तक लग्न का समय न आवे ब्राह्मण मांगलिक श्लोकों का पाठ करें। समय आने पर अन्तःपट हटा कर कन्या-पिता 'कन्यावरौ समञ्जेथाम्' कहे। वर कन्या के सामने देखता हुआ 'समञ्जन्तु विश्वे देवाः' मंत्र पढ़े।

कोई भी कन्या-पिता का सगोत्र पुरुष एक आशीर्वादार्थक श्लोक पढ़ कर वर पक्ष के तीन पीढ़ी तक के गोत्र, प्रवर, वेद, शाखा और पुरुषों के नाम पूछे। वरपक्षीय ब्राह्मण भी एक आशीर्वादार्थक श्लोक पढ़कर प्रश्न के क्रम से सब का उत्तर देवे। प्रश्नोत्तर का ढांचा पद्धति में संस्कृत में लिखा हुआ मिलता है। इस गोत्रोच्चार के समय सिंघाड़े या श्रीफल दोनों पक्ष वाले अपनी वाक्य-रचना के अन्त में परस्पर को झेलाते हैं।

गोत्रोच्चार की समाप्ति में कन्या-पिता कुश, जल, तुलसी-पत्र लेकर कन्या-दान का संकल्प करे। गोत्रोच्चार से निश्चित हुए दोनों पक्षों के गोत्र, प्रवर, वेद-शाखा और पूर्व-पुरुषों के नामों का उच्चारण करते हुए संकल्प समाप्त कर कन्या

का दक्षिण हाथ वर के दक्षिण हाथ में देवे। वर कन्याओं के हाथ के नीचे कांसी की थाली रक्खे। संकल्प छोड़ने के समय कन्या की माता वर-कन्याओं के हाथों पर जल-पात्र हाथ में उठा कर अविच्छिन्न जलधारा कुछ समय तक डाले। वर इस समय 'ॐ स्वस्ति' कहे। कन्या के माता-पिता खड़े होकर बैठे हुए वर के लिये कन्या-दान का सङ्कल्प मेलावें। विधान-पारिजात में इस विषय का यह प्रमाण वचन है—

'चतुष्पाद गृह कन्या दासीं छत्र रथ तरम्।
तिष्ठन्नेतान् द्विजो दद्याद् भूम्यादीनुपविश्य च'

इसके बाद कन्या-पिता 'कन्या कनक-सपन्ना' ये दो दानश्लोक पढ़ 'गौरीं कन्या ये दो प्रार्थना श्लोक पढ़े। फिर 'कन्ये ममाग्रतो भूया' यह कन्या प्रार्थना पढ़े। वर और कन्या दोनों के गन्धाक्षत चढ़ावें।

वर कन्या स्वीकारके 'देवस्य त्वा' 'द्यौस्त्वा' दोनों मन्त्र पढ़ कर अन्त में 'ॐ 'स्वस्ति' कहे। कन्या के दक्षिण हाथ का अंगूठा पकड़ कर 'कोऽदात्' इस कामस्तुति को पढ़े। कन्यापिता वर के सामने हाथ जोड़ कर 'कन्या मम कुले' मंत्र पढ़े। अन्त में 'धर्मे चार्थे च कामे च नातिचरितव्या त्वयेयम्' कहे। वर 'नातिचरामि' कह कर स्वीकार करे। इतनी विधि पूर्ण होने पर कन्या-पिता बैठकर सङ्कल्प लेकर वर के लिये कोई सुवर्णालंकार देवे। वर 'ॐ स्वस्ति' कहता हुआ लेवे।

इसके बाद कन्या को वर के पास दक्षिण पार्श्व में

करे एवं 'तुभ्यमग्ने' मंत्र पढ़ता हुआ वधू को आगे रखकर अग्नि की प्रदक्षिणा करे। प्रथम प्रदक्षिणा समाप्त होने पर फिर 'अर्यमणम्' आदि तीन मंत्रों से कन्या लाजा होम करे। 'गृभ्णामि ते' मंत्र से वर वधू का पाणि-ग्रहण करे 'आरोहेम' मंत्र से शिला पर आरोहण करावे। 'सरस्वति प्रेदमिव' गाथा का गान करे। बाद में 'तुभ्यमग्ने' मंत्र पढ़ता हुआ वधू को आगे कर अग्नि की दूसरी प्रदक्षिणा करे। ऐसे ही फिर तीसरी बार लाजाहोम, पाणिग्रहण, अश्मारोहण, गाथा-गान करके 'तुभ्यमग्ने' मंत्र से अग्नि की प्रदक्षिणा करे। तीसरी प्रदक्षिणा की समाप्ति में 'भगाय स्वाहा' मंत्र से शेष रहे सभी भूँजे चांवल और शमी के पत्तों की आहुति दे देवे। शिष्टाचार के अनुसार बिना मंत्र वर आगे रह कर ४ थं प्रदक्षिणा करे। तीन प्रदक्षिणा ब्रह्माजी-सहित अग्नि की करे और चौथी प्रदक्षिणा ब्रह्माजी को बाहर रखकर करे। फिर दोनों यथास्थान बैठें। वर मन में प्रजापति का ध्यान कर 'प्रजापतये स्वाहा' मंत्र से एक आहुति देवे।

वर अपने सामने उत्तरोत्तर चांवल की ७ छोटी-छोटी ढेरियाँ रखकर 'एकमिषे' से लेकर 'सखे सप्तपदा' पर्यन्त के ७ मंत्रों से वधू को ७ पैर उन ढेरियों पर रखने के लिये प्रेरित करे। वधू अपना दक्षिण पांव उन ढेरियों पर मंत्र के साथ रक्खे। बायां पांव खाली रक्खे। यह विवाह में महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसका नाम सप्तपदी-गमन है। इस अवसर पर श्री शंकर-पार्वती के विवाह की कथा कही जाती है यह लोकाचार है। कुछ पौराणिक प्रतिज्ञावचन भी पढ़े जाते हैं।

इसके अनन्तर पूर्वोक्त अभिषेक-कुम्भ में से कुछ जल पात्रमें लेकर दर्भ, दूर्वा या आम्रपल्लवों से 'आप शिरा' "आपो हि ष्ठा' मंत्र बोलता हुआ वर वधू के मस्तक पर अभिषेक करे। वर 'सूर्यमुदीक्षस्व' वाक्य कहे। इसको सुन कर 'तच्चक्षुर्देवहित' मंत्र बोलती हुई वधू सूर्य के दर्शन करे। वर दक्षिण कन्धे पर से अपना हाथ ले जाकर वधू के हृदयका स्पर्श 'मम व्रते' मंत्र बोलता हुआ करे। 'सुमंगलीरिय वधू' मन्त्र से वधू का अभिमन्त्रण करे। शिष्टाचार के अनुसार वधू को अपनी बाईं ओर बैठावे एवं द्वितीय यज्ञोपवीत धारण करे। फिर अग्नि के पूर्व या उत्तर में दूसरे स्थान पर बिछाये हुए लाल वस्त्र पर वर 'इह गावो' मंत्र बोलता हुआ वधू को बैठावे यह वर के लिये आवश्यक नहीं है। बड़ा भाई मामा वगैरह भी बैठा सकते हैं। फिर हाथ पाँव प्रक्षालन कर वधू-वर अग्नि के पास बैठें। वर आचमन कर 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' मंत्र से एक आहुति देवे। प्रोक्षणीपात्र में पड़े हुए संस्रवनामक घीके अंश को थोड़ा मुँह में डाले या सूँघे। प्रणीतापात्र का जल लेकर पवित्र नामक दो दर्भों से मार्जन करे। 'स्वाहा' कह कर पवित्रे अग्नि में डाल दे। चावलों से भरे हुए पूर्णपात्र को दक्षिणा-सहित ब्रह्माजी को 'अकृत कर्म' मंत्र पढ़ता हुआ संकल्प करके देवे। आचार्य के लिये यजमान ब्राह्मण हो तो गाय, क्षत्रिय हो तो गाव, वैश्य हो तो घोड़ा देवे। अथवा यथाशक्ति दक्षिणा देवे। फिर भूयसी दक्षिणा और ब्राह्मण-भोजन का संकल्प करे। यज्ञ-भस्म लेकर 'त्र्यायुष जमदग्ने' मंत्र से तिलक करे। घृत पात्र में दक्षिणा डाल कर 'रूप रूपं प्रतिरूपो बभूव' मंत्र से छाया देख कर दान करे। पत्नी को अपनी बाईं ओर बैठा कर ब्राह्मणों से अभिषेक करावे। तिलक, रक्षासूत्र, मंत्राशीर्वाद होने के

बाद 'ध्रुवमसि' मंत्र से वधू को ध्रुव-दर्शन करावे। वधू ध्रुव न देख सके तथापि देख रही हूँ यही कहे। शिष्टाचार के अनुसार घर के भीतर जाकर स्थापित गणेश तथा कुल-देवताओं का पूजन करें। फिर वधू-वर बरात के मुकाम पर जाकर लोकाचार पूरा करें।

विवाह की अग्नि रह सकती हो तो चतुर्थी-कर्म पर्यन्त इसे रक्खे। यदि रखने-जैसा ढंग न हो तो विवाहाग्नि में पलाश समिधाको तपाकर उसमें अग्नि-समारोप कर ले।

वर्तमान समय में यद्यपि कुछ ब्राह्मणजातियों में चतुर्थी-कर्म प्रचलित नहीं है, परन्तु यह करना आवश्यक है। इसके बिना विवाह-संस्कार अपूर्ण रह जाता है। 'सोमःप्रथमो विविदे' इत्यादि मंत्रों में कहे हुए सोम, गन्धर्व, अग्नि इन तीन देवों के द्वारा जन्म से ८ वर्ष पर्यन्त कन्या उपभुक्त होती है। इसका परिणाम यह होता है कि कोई कन्या विधवा, कोई मृतवत्सा (बच्चा बच्ची न जीवे) और कोई कलङ्कित हो जाती है—इन दोषों के निवारण के लिये चतुर्थी-कर्म किया जाता है। जिसमें अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र और गन्धर्व इन पांच देवों के लिये होम कर इनसे उक्त दोषों के निवारण के लिये प्रार्थना की जाती है। पाठक स्वयं विचार करें कि यह कैसा उपयोगी उत्तम कार्य है।

यह कार्य विवाह के चौथे दिन पिछली रात को करना चाहिये। परन्तु चौथा दिन कदाचित् सफर में आ जाता हो और मार्ग में यह करना संभव न हो तो अवकाश के अनुसार आगे-पीछे कर सकते हैं, परन्तु कर्म का त्याग करना उचित नहीं है।

चतुर्थी-कर्म का स्वरूप

वर अपने दक्षिण में वधू को बैठाकर आचमन प्राणायाम कर सकल्पपूर्वक गणपति पूजन करे। फिर प्रधान सङ्कल्प कर मातृका-पूजन, घृतमातृका-पूजन, पुण्याह वाचन पूरा कर होम के लिये एक हाथ समचौरस चार अंगुल ऊँचे स्थण्डिल पर विवाह की अग्नि स्थापित करे। विवाह की अग्नि न रही हो तो लौकिक अग्नि स्थापित कर उसमें पूर्वोक्त विवाहाग्नि में तपाई हुई समिधा रक्खे। फिर नवग्रहों की पूजा कर कुशकण्डिका पूरी करे। चतुर्थी-कर्म में शिखिनामक अग्नि की स्थापना की जाती है। आघार, आज्यभाग की आहुतियाँ पूर्ण होने पर ब्रह्मा के अन्वारम्भ का (दर्भ के द्वारा सम्बन्धका) त्याग कर अग्नि-आदि उपर्युक्त ५ देवों के लिये 'अग्ने प्रायश्चित्ते' आदि ५ मन्त्रों से आहुतिया देवे। इनका संस्रव त्याग प्रोक्षणी में न कर पृथक् जल पात्र में करे। फिर होम के लिये बनाई गई खीर में घृत डाल कर मन में प्रजापति का ध्यान कर प्रजापति के लिये एक आहुति 'ॐ प्रजापतये स्वाहा' मन्त्र से देवे। घी और खीर दोनों स्रुच में लेकर एक आहुति ब्रह्मा का अन्वारम्भ रखते हुए 'ॐअग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' मन्त्र से देवे। इसके अनन्तर 'ॐ भूः स्वाहा' से लेकर 'ॐ उदुत्तम वरुण' 'ॐ प्रजापतये स्वाहा' पर्यन्त १० मन्त्रों से घृत की आहुतिया देवे। फिर परिस्तरण के दर्भोंका होम, संस्रवप्राशन, अग्नि में दोनों पवित्र दर्भों का त्याग, प्रणीता-विसर्जन, पूर्ण पात्र-दान करे।

'अग्ने प्रायश्चित्ते' आदि ५ मन्त्रों से किये जाने वाले होम

का संस्रवत्याग जिस जलपात्र में किया है उस में से जल लेकर 'या ते पतिघ्नी' मंत्र से वर वधू के मस्तक पर अभिषेक करे। 'प्राणैस्ते प्राणान् संदधामि' मंत्र से वर वधू को खीर का एक ग्रास खिलावे। ४ ग्रास शिष्टाचार के अनुसार बिना मंत्र खिलावे। 'ॐ यत्ते सुषीमे' मंत्र से हृदय का स्पर्श करे। फिर कांकणडोडा छोडने का लोकाचार पूरा करे। इसका मंत्र यह है:—

कंकणं मोचयाम्यद्य रक्षोघ्नं मम रक्षणम् ।
मयि रक्षां स्थिरां कृत्वा स्वस्थानं गच्छ कंकण ॥

फिर 'ॐतनूपा अग्नेऽसि' इत्यादि मंत्रों से हाथ तपावे, अंग स्पर्श करे। अग्नि का उत्तर-पूजन एवं प्रदक्षिणा कर आचार्य और ब्रह्मा के लिये दक्षिणा देवे। विवाहनिमित्तक १०० ब्राह्मणों को भोजन कराने का संकल्प कर भूयसी दक्षिणा का संकल्प करे। भस्मवन्दन, घृतच्छायादर्शन, अभिषेक, तिलक, मंत्राशीर्वाद होने पर अग्नि-विसर्जन कर कर्म समाप्त करे। कर्म ईश्वर के लिये अर्पण करे।

कन्या-विक्रय

शास्त्रों में कन्या और पुत्र को अपत्य कहा है। अपत्य उसको कहते हैं कि जो अपने माता-पिता को नरक में गिरने से बचावे अर्थात् पिण्डदान, श्राद्ध, तर्पण आदि पुण्य कर्म करके उनको स्वर्ग में पहुँचावे। इसलिये पुत्र और कन्या धर्म के साधन हैं अर्थात् इनके द्वारा मनुष्य स्वर्ग में जा सकता है। परन्तु आजकल उन धर्म के साधनों

से अधर्म का काम लिया जा रहा है। पुत्र और कन्या बेचे जा रहे हैं। मनुष्य धर्म के साधनों से अधर्म करके आत्महत्या कर रहा है और जो आत्महत्या करता है, वह ईशावास्य उपनिषद् के अनुसार घोर नरक में जाता है, जहाँ कभी सूर्य का उदय ही नहीं होता।

मनुजी महाराज ने कन्या विक्रय का बार-बार निषेध किया है और कहा है कि जो ऐसा करता है, वह शूद्र है, चाण्डाल है। मैंने किसी भी जन्म में ऐसा छिप कर अपने बाल बच्चों को बेचना नहीं सुना है।

मास बेचने का काम चाण्डाल का है, ब्राह्मण का नहीं। इसी लिये धर्मशास्त्रों में ब्राह्मण के लिये गाय-आदि पशु बेचना भी निषिद्ध है, क्योंकि यह काम भी बुरा ही है। जीवों को बेचने का काम भी मास बेचना ही माना गया है।

कन्या का पैसा लेकर उसके विवाह में खर्च कर देना भी पाप ही है, क्यों कि यह सब अपनी प्रतिष्ठा के लिये किया जाता है। अर्थात् कन्या-पिता समझता है कि जाति-भोजन नहीं करने पर लोग मुझे घृणा की दृष्टि से देखेंगे। समाज में प्रतिष्ठा की इच्छा से कन्या-विक्रय करना भी पाप ही है।

दरिद्रता के कारण लिया गया पैसा जाति भोजन में खर्च करके भी दरिद्री ही बना रहेगा, क्योंकि पैसा तो जाति खा जाती है।

कन्या को बेच कर किये गये जाति-भोजन में जाति वालों को नहीं जाना चाहिये, क्योंकि कन्या-विक्रय करने

वाला पापी है इसलिये उसका साथ देने वाला भी पाप का भागी होता है।

धन के लोभ में आकर पिता अयोग्य वर को अर्थात् मूर्ख, बूढ़े अथवा बालक को कन्या दे देता है जिससे वह कन्या जीवन भर दुःख उठाती है और माता पिता को शाप देती रहती है। शाप के प्रभाव से पैसे लेने वाले का वंश नहीं चलता देखा गया है।

कन्या सदाचारिणी होती है तो शाप देकर कुल का नाश कर देती है और दुराचारिणी होती है तो व्यभिचार करके कुल को कलङ्कित कर देती है। गीता में लिखा है कि व्यभिचारिणी स्त्रियों के वर्णसंकर संतान उत्पन्न होती है और उनसे पिण्डदान नहीं मिलने के कारण सारा वंश नरक में जाता है।

पैसा देकर किये गये विवाह से जो संतति होती है वह अपने गोत्र की नहीं होती है-अर्थात् नानाजी के गोत्र की होती है जिसे माता पिताओं के पिण्डदान करने का अधिकार ही नहीं होता है। इसलिये जाति-बन्धुओं से प्रार्थना है कि ऐसे दुर्व्यवहार से दूर रहें।



विशिष्ट-वंश-परिचय

आमेटा-ब्राह्मणों में अनेक धनी मानी विद्वान् भाग्यवान् पुरुप प्राचीन समय में हुए हैं, जिनकी निर्मल कीर्ति कई शताब्दियां व्यतीत होने पर आज भी, बड़ी श्रद्धा के साथ पूर्ववत् गाई जा रही है, एवं जिससे आधुनिक जाति बन्धुओं को अपनी उन्नति में अग्रसर होने के लिये पर्याप्त प्रोत्साहन मिलता है। अतएव ऐसे पुरुषों के पवित्र चरित्रों का परिचय देना नितान्त आवश्यक है। ऐसे पुरुष इस जाति में मेवाड़, मारवाड़, मालवा आदि सभी प्रदेशों में हुए हैं, परन्तु जाति का सब से अधिक समूह मेवाड़ में है, इसलिये यहां से आरम्भ किया जाता है।

मेवाड़-मंडल

कश्यपगोत्रीय पाठक

संपूर्ण आमेटा जाति के प्रधान तिलकायित पं० श्रीकृष्णजी पाठक हैं। आपका निवास उदयपुर में है। आपके पूर्वपुरुष कश्यपगोत्रीय श्रीपतिजी पाठक वि० संवत् १२०० के आस पास मेवाड़ में आये। श्रीपतिजी के ७ वें वंशधर लक्ष्मीदासजी और इनके पुत्र हरिहरजी वेद, कर्मकाण्ड, तन्त्र, दर्शन आदि अनेक विषयों के प्रौढ विद्वान् थे एवं सदाचारनिष्ठ तपस्वी पुरुष थे। मेवाड़ के तत्कालीन महाराणा ने सुवर्णमय काल-पुरुष का दान करना चाहा तब मेवाड़वासी ब्राह्मण डर गये और कोई भी उसे लेने को तैयार नहीं हुआ। अन्त में महाराणा ने विवश होकर हरिहरजी से बहुत आग्रह किया तो हरिहरजी ने

उसे स्वीकार किया। प्रतिग्रह का दोष दूर करने के लिये हरिहरजी ने छः मास तक अनुष्ठान किया और अनुष्ठान की समाप्ति में 'महारुद्र' याग किया, जिसकी वेदी पाठकजी साहब के मकान के चौक में अभी भी सुरक्षित है। महारुद्र के अवसर पर सभी जाति-बन्धुओं को निमन्त्रित कर २१ दिन पर्यन्त भोजन कराया एवं प्रत्येक को विदा के समय एक २ मुहर दक्षिणा में दी। कालपुरुष-दान में मिले हुए ढाई मन सुवर्ण का इस प्रकार हरिहरजी ने सदुपयोग किया। तप एवं त्याग से प्रभावित होकर महाराणाओं ने इस वंश का अच्छा संमान किया था। महाराणा राजसिंहजी एवं अमरसिंहजी के समय में कई गावों में जागीरें मिलीं, जो अभी भी बहुत अंशों में वर्तमान हैं। महाराणाओं ने हरिहरजी के वंशधरों को घर पर 'हाथी रखने का' और गुम्बजदार मकान (महल) बनवाने का अधिकार वंश-परम्परा के लिये दिया है। आमेटा जाति ने भी अपने सत्कार के प्रतिफल में हरिहरजी के वंशधरों को सजातीय-समाज में उच्च आसन, सर्वप्रथम तिलक, एवं समग्र जाति से सम्बन्ध रखने वाली लिखा-पढ़ी इनके नाम से हो यह संमान दिया है, जिसका यथावत् परिपालन आज भी हो रहा है।

हरिहरजी के ७ वें वंशधर अम्बालालजी पाठक थे; जिनके सुपुत्र वर्तमान पाठकजी साहब हैं, जो बड़े ही सौम्य, मिलनसार एवं इंग्लिश-भाषा के अच्छे विद्वान् हैं।

चन्द्रात्रेय व्यास जोशी

चन्द्रभागा नदी के पास गांव आगर्या में इस गोत्र के

प्रसिद्ध पुरुष नन्दजी (नादाजी) व्यास रहते थे, जो बड़े ही कर्मनिष्ठ और विद्वान् पुरुष थे। इनके पुत्र कर्ण (कानजी) की कन्या तारादेवी महाराणा लक्षसिंह के गुरु त्रिलोचन भट्ट को ब्याही गई थी जिसने गांव कांडियाँ में एक भव्य विष्णुमंदिर बनवाया था। जब गांव आगर्या दैवी उत्पात से नष्ट हुआ उस अवसर पर तारादेवी अपनी कुशलता से अपने भतीजे शंकर को बचा कर अपने साथ ले आई थी। यह शंकर बड़ा भाग्यशाली पुरुष था। इसने अपनी विद्या से तत्कालीन महाराणा को प्रसन्न किया, जिससे इसके वंशधरों को बहुत वर्षों तक राज्य की ओर से सम्मान मिलता रहा। शंकर के १२ पुत्र थे जिनके वंशधरों के अधिकार में महाराणाओं की ओर से मिले हुए १२ गांव थे। इनमें से करणपुर, कारोल्या, थारा, बीरवास, फलाश्या, फलचा आदि कई गांव आज भी मौजूद हैं। शंकर ने, अपना असाधारण उपकार करने वाली अपनी बुआ तारादेवी जब सती होने लगी तो उससे, अपने मंगल की प्रार्थना की, जिसके उत्तर में सती ने अपने श्रीहस्त के पूजन का आदेश दिया, जिसका पूजन सभी चन्द्रात्रेय आज भी करते हैं। शंकर ने आगर्या के पास चन्द्रभागा नदी को बांध कर एक तलाव बनवाने का प्रारम्भ किया था, जिसकी पूर्ति करने में ही शंकर का जीवन समाप्त हुआ। सरदारगढ के पास शंकर के दाहस्थान पर समाधि-मंदिर बना हुआ है, जिसकी पूजा एक नाथ साधु करता है। शंकर के १२ पुत्रों में सबसे बड़ा शिवजी था, जिसके वंशज कर्णपुर के माफीदार हैं। शंकर ने अपने जीवन में कई जाति सेवाएं की थीं, जिसके प्रतिफल में जाति ने पाठकजी साहब के बाद तिलक

एवं दूनी लेणी मिलने का अधिकार शिवजी के वंशधरों को दिया है, जिसका निर्वाह अभी तक हो रहा है। पंचायती आज्ञा की पाबंदी कराने का अधिकार भी इनका है। शिवजी के वर्तमान वंशधरों में तिलकायित पं० नारायणलालजी हैं एवं पं० कृष्णलाल व्यास ज्यौतिषाचार्य अच्छा विद्वान् है।

शंकर के वंशधरों में जो तीन वेदों का अभ्यास करते थे उनका अवटंक त्रिवेदी और पुराण पढ़ते थे उनका व्यास और ज्यौतिष का कार्य करते थे उनका अवटंक जोशी प्रचलित हो गया। वीरवास के त्रिवेदी कहते हैं कि हम पीपाणा गांव से आये हैं। फलाश्या और फलवा के जोशियों की परिस्थिति ठीक है। इनमें भी फलाश्या वाले गमेरलालजी ने अच्छी उन्नति की है। जागीर की आमदनी की दृष्टि से इनकी समानता करने वाले आमेटों में कुछ ही व्यक्ति होंगे। कारोल्या के माफीदार कल्याणजी जोशी के कुछ वंशधर सलुम्बर में और जयसमुद्र में जा बसे हैं। इनमें पं० रत्नलालजी ठिकाना सलुम्बर के राज्य-ज्यौतिषी थे। आपको अपने गुरु कुबेरदत्तजी से ज्यौतिष के साथ २ योग की भी बहुत उत्तम शिक्षा मिली थी, जिसका प्रभाव आपके जीवन में दृष्टिगोचर होता था। आपके छोटे भाई कृष्णदासजी थे, जो व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, ज्यौतिष आदि कई विषयों के अच्छे विद्वान् थे। ये विरक्त होकर बनारस चले गये थे, जहां १० वर्ष रहे। अन्तिम जीवन के ६ वर्ष प्रतापगढ़ स्टेट के भूतपूर्व महाराजा सर रघुनाथसिंहजी साहब के० सी० आई० ई० के आश्रय में व्यतीत किये। अन्तिम जीवन में आपने भक्ति-महिमा पञ्चदशी और प्रतिमा-मण्डन

ऐसे दो संस्कृत-ग्रन्थ एव 'मयूरेश-मन्दार' नाम का एक हिन्दी कवितावद्ध ग्रन्थ ऐसे तीन ग्रन्थ लिखे, जो अभी अप्रकाशित हैं। रायबहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकरजी हीराचन्दजी ओझाने भी प्रतापगढ़ स्टेट के इतिहास में आपके वैदुष्य की प्रशंसा की है। वर्तमान समय में प० रत्नलालजी के सुपुत्र प० मुकुन्दरामजी सलुम्बर ठिकाने के राजज्यौतिषी हैं और प० कृष्णदासजी के सुपुत्र प० जगन्नाथ शास्त्री, काव्यतीर्थ इस समय प्रतापगढ़ स्टेट के राजपण्डित हैं।

वत्सगोत्रीय जोशी

विक्रम की १४ वीं शताब्दी में वत्सगोत्रीय जोशी यादवजी अपने परिवार-सहित मेवाड़ में आये। इनके वंशधर द्वितीय शिवशंकरजी बड़े तपस्वी थे। इन्होंने गांव फाचर के पास के वन में कई वर्ष तक दृढचित्त रह कर आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने दर्शन दिया, ऐसा परम्परा से सुना जाता है। इनके आराधना-स्थल में भगवान् शिव की मूर्ति अभी वर्तमान है। इनके वंशधर जोशी लक्ष्मीदासजी वेद, दर्शन, तन्त्र, पुराण आदि अनेक विषयों के प्रौढ विद्वान् थे। इन्होंने बनारस जाकर विद्याभ्यास किया था। विक्रम संवत् १७३२ में महाराणा राजसिंह ने अपने बनवाये हुए राजसमुद्र तालाब की प्रतिष्ठा की, उसमें लक्ष्मीदासजी भी सम्मिलित थे। आपने मंत्रबल से अग्नि प्रकट की एवं अपनी कर्मकाण्डकुशलता का ऐसा परिचय दिया, जिससे महाराणा बहुत प्रसन्न हुए। महाराणा की कृपा के फल-स्वरूप आपको ठिकाना बागोर के लक्ष्मीनारायण के

मन्दिर में कथाव्यास का पद मिला, जो अभी आपके वंशधरों के अधिकार में है। लक्ष्मीदासजी के चतुर्थ वंशधर नृसिंहदासजी नवाणिया से आकर उदयपुर में रहने लगे। नृसिंहदासजी के तृतीय पुत्र शिवलालजी ने महाराणा स्वरूपसिंहजी के समय खेरोदा और वागोर में जागीर प्राप्त की, जो अभी तक आपके वंशधरों के अधिकार में है। शिवलालजी के प्रथम पुत्र पं० रत्नेश्वरजी थे, जो तत्कालीन विद्वानों में अच्छे प्रतिष्ठित माने जाते थे। कई ब्राह्मण-बालकों ने आपसे विद्यालाभ कर अपने जीवन को सुधारा था। वागोर महाराज के छोटे भाई सोहनसिंहजी की आप पर विशेष श्रद्धा थी। विक्रम संवत् १९३४ पौष कृष्णा षष्ठी को प० रत्नेश्वरजी के सुपुत्र पं० मोहनलालजी का जन्म हुआ। आपने भी बाल्य-काल में अपने पिता के समान संस्कृत भाषा की शिक्षा प्राप्त की एवं अपने जीवन के पश्चिम भाग में प्रबल पुण्यों के प्रभाव से आपको ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ कि जो केवल आपके वंशजों के ही लिये नहीं, किन्तु संपूर्ण आमेटा जाति के लिये गर्व और गौरव की वस्तु है। विक्रम संवत् १९९५ के वैशाख में आप संन्यास ग्रहण कर हिन्दू-सूर्य महाराणाओं के कुलगुरु महर्षि हारीतराशि के द्वारा प्रतिष्ठापित श्री एकलिंग धाम मेवाड़ के गोस्वामि-पद पर प्रतिष्ठित हो गये हैं। अब आपका पवित्र नाम गोस्वामीजी श्री १०८ श्री सवाई राघवानन्दजी महाराज है।

आपके पूर्वाश्रम की कोई संतति अब अवशिष्ट नहीं है। केवल आपके छोटे भाई वंशीलाल जी के एक सुपुत्र हैं जिनका नाम पं० बालकृष्णजी व्यास है। ये गवर्न्मेन्ट कालेज बनारस की साहित्य-शास्त्रि-परीक्षा उत्तीर्ण हैं एवं साहित्य-

इतिहास आदि विषयों के अच्छे विद्वान् हैं। आप अब तक दो-तीन संस्कृत ग्रन्थों का संपादन प्रकाशन कर चुके हैं जिनसे आपकी अच्छी योग्यता प्रमाणित होती है और आजकल आप भोपाल नोबल्स्-स्कूल, उदयपुर में हेड पंडित हैं।

उपर्युक्त पं० नृसिंहदासजी व्यास के ज्येष्ठ पुत्र केशवरामजी थे, जो मेणार गाव में रहते थे। आपके पञ्चम वंशधर गङ्गाधरजी पर मेवाड़ के वैकुण्ठवासी महाराणा सज्जनसिंह जी के जनक पिता बागोर के महाराजा शक्तिसिंहजी की विशेष कृपा थी। गङ्गाधरजी का पौत्र और गोवर्धनजी का पुत्र यह गिरिधारीलाल है, जिसने इस इतिहास के संपादन की सेवा की है।

वत्स जोशियों के कुछ घर ठिकाना कुरावड में भी हैं, जिनको मेवाड़-राज्य की ओर से एवं कुछ ठिकाने से भी जागीरें मिली हुई हैं। इनमें ज्योतिषी शिवजी विशेष प्रसिद्ध थे, जिन्होंने कई वर्ष तक कुरावड ठिकाने का काम किया था। पं० मोतीरामजी ने अपनी ज्योतिष विद्या से मेवाड़ के भूतपूर्व प्रसिद्ध दीवान मेहता पन्नालालजी को प्रसन्न किया और इन की सहायता से माफीदार ब्राह्मणों पर ठिकाना कुरावड़ की ओर से होनेवाली अनुचित कार्रवाईयों का प्रतीकार किया एवं जप्त हुई भूमि बहाल करवाई। इस वंश के दो प्रसिद्ध ज्योतिषी पं० भवानीशंकरजी और नन्दकिशोरजी अभी कुछ समय पूर्व ही संसार से विदा हुए हैं।

गाव नवाणिया के वत्स जोशियों में पं० वटुकनाथजी प्रसिद्ध तान्त्रिक थे। इन्होंने जबलपुर में जाकर अच्छा

संमान प्राप्त किया। आज भी आपके वंशधर पं० वाल-कृष्णाजी आदि का जबलपुर वाले अच्छा आदर करते हैं। कुरावड़ के वत्सजोशियों में पं० गणपतिलालजी जोशी अच्छे प्रतिभाशाली विद्वान् हैं। इन्होंने काव्यतीर्थ, वेदान्त-शास्त्री, हिन्दीरत्न, आयुर्वेदभिषक् आदि कई परीक्षाएं उत्तीर्ण की हैं एवं इंग्लिश का भी अच्छा अभ्यास किया है। संस्कृत और हिन्दी के गद्य-पद्य लिखने में अच्छे कुशल हैं। वत्स-गोत्र में विद्या का प्रचार अच्छा है। और भी कई नवयुवक इंग्लिश संस्कृत के विद्वान् हैं।

कश्यपगोत्रीय जोशी

कश्यप गोत्रीय जोशियों में प्रतापगढ़ स्टेट के पुरोहितों का वंश विशेष प्रतिष्ठित है। इसके मूल पुरुष सोजत (मारवाड़) से आकर कुंभलगढ़ के पास केलवाड़े में रहने लगे थे। मुहणोत नैणसी की ख्यात देखने से मालूम होता है कि महाराणा कुम्भकर्ण के पुत्र उदयसिंह ने अपना एक विवाह सोजत में किया था। संभव है वहाँ के बाईजी के साथ इनका मेवाड़ में आगमन हुआ हो। काँठल-राज्य के संस्थापक सूरजमल के पिता क्षेमसिंह की उक्त उदयसिंह के साथ अच्छी मित्रता थी, इसीसे इनका सम्बन्ध प्रतापगढ़ राज्य के साथ जुड़ गया हो ऐसा अनुमान है। वृद्ध-परंपरा से सुना जाता है कि विक्रम की १७ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में महारावत विक्रमसिंहजी बड़ी सादड़ी की जागीर का त्याग कर कांठल में आये, उस समय उनके साथ इस पुरोहित वंश के मूल पुरुष कीकाजी उर्फ कृष्णाजी साथ आये थे। बाद में इनके और भी कुटुम्बी काँठल में आकर रहने लगे। महारावत विक्रमसिंहजी को बांसवाड़े के

रावत प्रतापसिंह के साथ अच्छी मित्रता थी। इस प्रसंग से कृष्णाजी के वंशधरों का बासवाड़ा-राज्य में भी प्रवेश हो गया था। कृष्णाजी के वंशधर गोपीनाथ को प्रतापसिंह के ५ वें वंशधर रावल समरसिंह ने अपने पिता उदयभाण के श्राद्ध के अवसर पर भूमिदान दिया था। महारावत भानुसिंहजी ने कृष्णाजी के वंशधर श्रीकण्ठजी जोशी को गांव सेमली दान में दिया जो अभी इनके वंशधरों के पास मौजूद है। इसके बाद महारावत प्रतापसिंह ने गांव मोभालेड़ी कृष्णाजी के वंशधरों को दिया। इन दो गांवों के सिवा और भी छोटी २ कई जागीरें कृष्णाजी के वंशधरों को मिल चुकी हैं और अभी ये अच्छी परिस्थिति में हैं। इस वंश के मुखिया पं० रेवाशंकरजी जोशी हैं, जिनको प्रतापगढ़ स्टेट के वैकुण्ठवासी नरेश महारावत रघुनाथसिंहजीसाहब बहादुर के० सी० आई० ई० ने ताजीम का सम्मान दिया था जो अभी तक पूर्ववत् है। राज-सम्मान में आपकी समानता रखने वाले आमेटों में दूसरे सुने नहीं गये हैं। इनके पूर्वपुरुष रघुरामजी की धर्मपत्नी ने वि० संवत् १८५० के फाल्गुन में एक जाति-सम्मेलन किया था। इस अवसर पर सभी जातिबन्धु १० दिनों तक इनके मेहमान रहे और सभी को एक-एक रुपया दक्षिणा दी गई। जाति-बन्धुओं ने प्रसन्न होकर आपके वंशधरों को सर्व प्रथम तिलक, आसन और 'दुगुनी लेनी' का सम्मान दिया है। आपके पूर्वपुरुष जोशी हरजी ने महारावत हरिसिंह के समय भगवान् सत्यनाथ का मंदिर बनवाया है, जो देवगढ़ में सूरजपोल के पास अब भी वर्तमान है।

गौतमगोत्रीय भट्ट

गौतम गोत्रीय भट्टों में भैंसरोड-गढ़ वालों की परिस्थिति अच्छी है। वि० संवत् १६५० में महाराज भानुसिंह शक्तावत ने भैंसरोडगढ़ से आकर भींडर वसाई, उस समय अपने साथ भैंसरोडगढ़ से गौतमगोत्रीय घनेश्वर भट्ट को लाया। धनेश्वर भट्ट के पुत्र श्रीराम ने माफी जागीर पाई, जो अभी उसके वंशधरों के अधिकार में है। श्रीराम के पुत्र हरजी मनोहरजी ने भींडर में गम्भीरसागर तालाब की पाल पर महादेव का मंदिर बनवाया जो अभी मौजूद है। इस मंदिर की प्रतिष्ठा के अवसर पर महारुद्रयाग और जाति-सम्मेलन किया था। आज भी भींडर में इनके वंशधरों के प्रथम तिलक होता है। गौतमगोत्रीय भट्टों के कुछ घर पहले देवलिया में भी थे। इनका महारावत हरिसिंहजी के दर्बार में अच्छा संमान था। मन्नाजी भट्ट ने बावड़ी और महादेव का मंदिर बनवाया था जो अभी जीर्ण अवस्था में वर्तमान हैं। मन्नाजी भट्ट और इसके वंशधर सोमजी जयशंकर आदि प्रौढ विद्वान् थे। इनके लिखे हुए शास्त्रदीपिका, कुंडप्रदीप आदि अनेक ग्रन्थ महेताओं के प्रसिद्ध संग्रह में हैं। इनका विशेष परिचय प्रतापगढ़ स्टेट से प्रकाशित ओझाजी कृत इतिहास, प्रतापप्रशस्ति आदि ग्रन्थों से उपलब्ध होता है। इनका वंश अब देवलिया में नहीं रहा। गौतमीय भट्टों में भींडर वाले पं० नाथूलालजी गणित-ज्योतिष के अच्छे विद्वान् हैं एवं वयोवृद्ध हैं। गांव तीतरडी के गौतम गौत्रीयों का अवटंक उपाध्याय है। महाराणाओं की ओर से विक्रम की १६ शताब्दी में इनको जागीर मिली। २० वीं शताब्दी के

प्रारम्भ में गंगारामजी ने विष्णु मन्दिर गांव तीतरड़ी में बनवाया और प्रतिष्ठा के समय जाति सम्मेलन किया था।

भारद्वाजीय भट्ट द्विवेदी

भारद्वाजीय भट्टों में महाराणा लक्षसिंह का गुरु त्रिलोचन भट्ट व्याकरण, वेद, कर्मकाण्ड, तन्त्र आदि अनेक विषयों का अच्छा विद्वान् और सिद्ध पुरुष था। इसकी योग्यता से प्रभावित होकर महाराणा लक्षसिंह ने गादोली और थाजविया ये दो गांव भेंट किये जो अभी तक इसके वंशधरों के अधिकार में हैं। महाराणा लक्षसिंह के पुत्र महाराणा मोकल ने भी इसका सम्मान पूर्ववत् ही रक्खा एवं कड़िया गांव और भेंट किया। कड़ियाँ गांव में त्रिलोचन भट्ट का एक शिलालेख है, जिसमें उसके पितामह का नाम सीहड़ और पिता का नाम राम लिखा है। त्रिलोचन भट्ट ने एक मंदिर बनवा कर उसमें अपनी इष्टदेवी विन्ध्यवासिनी की प्रतिष्ठा की थी, जो अभी वड़वासन माता के नाम से प्रसिद्ध है। भट्टजी का विवाह कर्णपुर वालों के पूर्वपुरुष कर्ण व्यास (कानजी) की पुत्री तारादेवी से हुआ था जो परम वैष्णव थी। इसने भगवान् चतुर्भुजनाथ का मंदिर बनवाया था और मंदिर की प्रतिष्ठा में वृहत् जाति-सम्मेलन किया था। भट्टजी ने कड़ियाँ गांव में एक विशाल तालाब बनवाया था, जो अभी भी 'भटेला' नाम से प्रसिद्ध है। भट्टजी के वंशधरों की इस समय भी परिस्थिति अच्छी है एवं मन्दिरों का पूजा प्रबन्ध भी इनके ही अधिकार में है। इनमें पं० हिम्मतरामजी विशेष व्यवहार दक्ष हैं। पंचायती फैसलों में आपकी राय

महत्त्वपूर्ण होती है। पं० परशुरामजी, उदयपुर, भी अच्छे साहित्य प्रेमी हैं। वृद्ध होते हुए भी नवीन विचारों का स्वागत करते हैं। भट्टजी के कुछ वंशधरों ने भींडर और भादसोडा में जाकर जागीरें प्राप्त कीं एवं आज अच्छी परिस्थिति में हैं। परिस्थिति के सुधारने का श्रेय गोविन्दरामजी चतुर्भुजजी एवं गोवर्द्धनजी को विशेष मिला। ठिकाना भींडर में कथा-व्यास का पद गोविन्दरामजी ने प्राप्त किया। पं० चतुर्भुजजी भट्ट ज्यौतिष के प्रौढ विद्वान् कर्मनिष्ठ एवं उदार पुरुष थे। जोदणास के जागीरदार भी त्रिलोचन भट्टजी के ही वंशधर हैं। भारद्वाजीय द्विवेदियों में देवलिया-प्रतापगढ़ के द्विवेदी आज भी अच्छी परिस्थिति में हैं। सभी जागीरदार हैं। राज्यज्यौतिषी का कार्य बहुत वर्षों से द्विवेदी ही कर रहे हैं। लोहारिया (बागड़) के द्विवेदियों में ज्यौतिष के कई अच्छे विद्वान् हुए हैं। इनके पूर्वपुरुष परमानन्दजी अच्छे योगी थे जिन्होंने अन्त में समाधिमग्न होकर शरीरत्याग किया था। वणकोडा के द्विवेदियों में पं० मौजीरामजी और पन्नालालजी अच्छे गणितज्ञ ज्यौतिषी थे, जो कभी सलुम्बर और कभी वणकोडा में रहते थे।

त्रिलोचन भट्टजी के शिलालेख में से कुछ इतिहासोपयोगी श्लोक यहां उद्धृत किये जाते हैं:—

श्रीमेदपाटे भटलक्ष्मसिंह: श्रीतिह्लभट्टं गुरुमाततान ।
स्वराज्यसिद्ध्यै सकलेष्टवृद्ध्यै यथा दिलीप: कृतिमत्प्रसिद्ध: ॥१॥
तस्मै ददौ हाटक-पट्टवास:-स्वेष्टार्थभारान्वित-गादलीकम् ।
श्रीवाजवीग्राममपारसीमं संकल्प्य तं राजकरै: प्रणीतम् ॥२॥

प्रमोचयामास गयादितीर्थवृन्द पर धर्मगुण च कार्यम् ।
ऐन्द्र पद जग्मुषि किन्तु तस्मिन् श्रीमोकलेन्द्रोऽपिगुरु प्रसाद ॥३॥
विधाय नक्तदिवमाचचार पूजा तदीया सुकृतीशमौलि ।
ग्राम कटीति प्रथित दिदेश तत कृतार्थ स जिगाय शत्रून् ॥४॥
अवाप राज्य रघुवर्तन स शिश्राय शाक्रामनमाथकीर्ति ।
तदीयसूनुर्धरणीशमौलि श्रीकुम्भकर्णोऽपि गुरु तमेव ॥५॥

चन्द्रात्रेयमुवशजा सुकृतभू पत्नी तदीया सदा
गृह्याचारविचारचारुचतुरा मन्दाकिनीवोज्ज्वला ।
पूर्णप्रोन्नतिहृत् शिवाश्रयलसत्सन्मार्गसमार्गणी
पातिव्रत्यमहोदया विजयते ताराभिधाना परा ॥६॥

नादानामा यस्या समग्रगुणभू पितामह समद ।
स्वाचार श्रुतिविदितो विख्यात ख्यातकीर्तिपूर्तियुत ॥७॥
यस्या पिता परमशर्मनिदानभूमि सर्वद्विजातिजनताकृतचारकीर्ति
आचारचारचरणोऽर्णवतुल्यमूर्ति
कर्णाख्या भुवि बभूव स सुप्रसिद्ध ॥८॥
धन सुतान् कीर्तिमथायुरिष्टमस्मिन् भवे प्राप्य पुनर्यथार्हम् ।
श्रीस्वामिचञ्चच्चरणाम्बुजन्मभृङ्गीभवामीति धिया सुकीर्ति ॥९॥
ऐहिकामुष्मिकसत्फलौघदात्रीं सुमूर्ति विरचय्य भव्याम् ।
श्रीकृष्णदेवस्य चतुर्भुजस्य विद्वद्भिरातिष्ठिपदत्र देशे ॥१०॥
गुरौ भुव रक्षति कुम्भभूपे कृष्णप्रतिष्ठा व्यतनोत्सुतारा ।
नभ खभूतेन्दुविराजिताब्दे पञ्चम्यहे माघसितेऽन्त्यपक्षे ॥११॥

कौण्डिन्य त्रिवेदी

कौण्डिन्य त्रिवेदियों में धारता वाले माफीदार हैं और परिस्थिति कुछ ठीक है। उदयपुर के कौण्डिन्यों में जयशंकरजी के वंश ने विशेष उन्नति की। आपके दोनों सुपुत्र पं० रत्नलालजी और रामचन्द्रजी प्रतिष्ठित राजकर्मचारी हैं एवं जातिबन्धुओं की सहायता करने में सदा तत्पर रहते हैं। दोनों ही सदाचारनिष्ठ एवं हिन्दी-साहित्य के पूर्ण अनुरागी विद्वान् हैं। पं० रत्नलालजी के सुपुत्र पं० जगदीशचन्द्रजी, आमेटा-जाति में सर्वप्रथम बी० ए०, एल० एल० बी० हैं। आप इस समय जिले के नायब हाकिम हैं।

नव-शिक्षित

कश्यपगोत्रीय पं० दुर्गाशंकरजी जोशी के सुपुत्र गणित लेकर एम्० ए० पास कर रहे हैं। पं० रत्नलालजी के द्वितीय पुत्र धर्मनारायणजी बी० ए० क्लास में पढ़ रहे हैं। बड़ी सादड़ी वाला चन्द्रात्रेय व्यास पं० जगन्नाथ अच्छा प्रतिभाशाली होनहार युवक है और अभी आयुर्वेदाचार्य कक्षा में पढ़ रहा है। अठानावाले पं० चतुर्भुजजी चन्द्रात्रेय के सुपुत्र हरिश्चन्द्रजी मेट्रिक्युलेट हैं। आपकी बहिन सौ० शान्ति अच्छी विदुषी हैं। इन्दौर, उदयपुर आदि कई स्थानों में अध्यापिका पद पर रही हैं।

पं० हरिवल्लभजी ने संस्कृत लेकर एम० ए० पास की है। उदयपुर के नवयुवकों में आपकी योग्यता प्रशंसनीय है। पं० गौतमलालजी, पं० शम्भुलालजी चन्द्रात्रेय जोशी, पं० मुकुटलालजी व्यास, पं० मोहनशंकरजी आदि कुछ

इंगलिश के विद्वान् नवयुवक मेवाड़ रेल्वे में सर्विस कर रहे हैं। आप उदार विचार के व्यक्ति हैं।

उदयपुर में आयुर्वेद-शिक्षा का उत्तम आयोजन होने से पं० नवनीतलालजी चन्द्रात्रेय व्यास, पं० नर्मदाशंकरजी गौतमीय भट्ट, प० घनश्यामलालजी गौतमीय भट्ट, आदि नवयुवक आयुर्वेद-शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। प० नाथूलालजी उपाध्याय, ऊँटाला, साहित्य विशारद पास हैं। पं० कृष्णदत्त जी वत्स जोशी ज्यौतिष की शास्त्री परीक्षा दे रहे हैं। प० शिवनाथजी वत्स जोशी कुराचक ड्राइंग की परीक्षा पास हैं एवं चित्रकला में प्रवीण हैं।

कणजाड़ा प्रान्त में विद्या का प्रचार अच्छा है, जिसमें प० दुर्गाशंकरजी, भँवरलालजी, लक्ष्मणलालजी, भवदत्तजी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आप लोगों में हिन्दी के कई अच्छे कवि हैं, जिनकी सामयिक कविताएं हिन्दी-पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं। इस प्रान्त की कन्याएं भी अच्छी शिक्षिता हैं।

झालावाड़-मंडल

झालावाड़-मंडल में शास्त्री कृष्णलालजी और सुजानपुर वाले प० रेवाशंकरजी ये दो काव्यतीर्थ हैं। गरोठवाले शास्त्री वल्लभजी के दौहित्र प० मदनलालजी बी० ए० हैं और आगे एल्० एल्० बी० की पढ़ाई कर रहे हैं।

सुजानपुरवाले भट्ट बाबूलालजी, जीरापुर वाले पृथ्वीराजजी के वंशधर और गरोठ वाले शास्त्री श्रीकृष्णजी के वंशधर इनके पास छोटी २ जागीरें हैं। छावनी के

शास्त्रीजी के अतिरिक्त बड़ा जागीरदार इस मंडल में कोई नहीं है।

मालवा-मंडल (शुजालपुर-मंडल)

इस मंडल में सारंगपुर के पाण्डेयों को धार स्टेट की ओर से जागीर मिली हुई है, जिसका विवरण मंडल-विभाग के प्रारम्भ में आया है। इनके अतिरिक्त शुजालपुर के नारायण भट्टजी भारद्वाज के पूर्व पुरुषों को गवर्नमेंन्ट केसरे हिन्द (?) से एवं पेशवा से जागीरें मिली थीं जो अभी उनके अधिकार में हैं। एक सालिम मौजा है एवं शेष छोटी २ जागीरें हैं। पं० रामभाऊजी धर्माधिकारी, शंकर भट्टजी चान्द्रायण, रामदयालजी द्विवेदी भारद्वाज, पंडा वैजनाथप्रसादजी गौतम आदि और भी जातिवन्धु शुजालपुर में जागीरदार हैं।

मारवाड़-मंडल

इस मंडल में रामपुर, मेसाणा, लांवा, मोहेरा, सांडिया, रावर, बुचकला, जसपाली, वीजपुर, भावी इत्यादि कई गावों में जागीरें हैं। इनमें सबसे पुराने जागीरदार भावी वाले हैं। विक्रम संवत् ११३७ में परमार वंशीय जुवथसिंह सिंधल ने १२५ बीघा जमीन कौशिक गोत्रीय जोशी भगाजी आमेटा को दी थी, जो अभी इसके वंशधर रामाजी, शिवजी आदि के अधिकार में है। गांव की पुरोहिताई भी इनके ही अधीन है।

वीरवास के रहने वाले विष्णुदासजी चन्द्रात्रेय त्रिवाडी के पौत्र लुंवाजी और मोतीरामजी को विक्रम संवत्

११३६-११४२ में उपर्युक्त जुवर्यसिंह सिंधल ने मारवाड़ में जागीरें दी। लुम्बाजी का वश नष्ट होगया और मोतीरामजी का वश अभी वर्तमान है। मोतीरामजी को गाव मोहेरा में २५० बीघा जमीन मिली थी जो अभी तक इनके वशधरों के अधिकार में है। मोतीरामजी के वशधर गङ्गारामजी के ७ पुत्र थे, जिनमें तीन का स्वर्गवास हो चुका है और प्रतापजी, रामसुखजी, हरिरामाचार्यजी और छगनीरामजी ये ४ शेष हैं। इनमें से प० रामसुखजी गाव मदारा जिला पूना में कपड़ों का व्यापार करते हैं। प० छगनीरामजी गाव मचर पूना में ज्यौतिष का व्यवसाय करते हैं। हरिरामाचार्यजी वनेड़ा के राममन्दिर के महन्त हैं, जिनका परिचय अन्यत्र आ चुका है। आपके एक ही पुत्र हैं जिनका नाम प० वालमुकुन्दजी हैं।

गाव भेसाणा में कौशिकगोत्रीय भगवान् जोशी को महाराणाओं ने जागीर दी थी एव रायपुर में ठाकुर तेजसिंह ने अर्जुनलाल जोशी को जागीर दी थी जो अभी इनके वशधरों के अधिकार में हैं।

पोखरलालजी वोहरा गाव सियाटवाले अच्छे व्यापारी हैं। आप की दुकान मद्रास में हैं।

भेसाणा के कौशिकगोत्रीय जोशी छगनीरामजी, लोटियाणा के शकरलालजी त्रिवाड़ी, सोंपा के वालूरामजी आचार्य, श्रीनाल (हाड़ोती) के मांगीलालजी वोहरा अच्छे द्रव्यपात्र हैं, एवं जातिवन्धुओं की सेवा करने में तत्पर रहते हैं।

रावतमाला के मास्टर साहव छोगालालजी जातीय

सेवा में बड़े उत्साह के साथ कार्य करते हैं। 'यस्मिन् द्वयं श्रीश्च सरस्वती च' इस कालिदास की उक्ति के अनुसार आप में लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का सुवर्ण-संयोग हुआ है।

इस मंडल में प्राचीन परिपाटी से पढ़े हुए व्याकरण, ज्यौतिष, कर्मकाण्ड, आयुर्वेद आदि विषयों के ह्रावरा, मांडवगण, मंचर आदि गांवों में कुछ विद्वान् हैं, परन्तु संस्कृत या इंग्लिश में टाइटल-परीक्षा-पास कोई नहीं है। इस समय के नवयुवक इंग्लिश पढ़ रहे हैं, परन्तु इनमें अभी तक ग्रेजुएट कोई नही हुआ। संपत्ति, सुप्रबन्ध और जातिसेवा की दृष्टि से यह मंडल अन्य मंडलों की अपेक्षा विशेष महत्त्व रखता है।

जाति का संरक्षण

संपूर्ण विश्व सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों से व्याप्त है, इसलिये कर्म भी राजस तामस भेदों से तीन प्रकार के हैं। जिस गुण से संबन्ध रखने वाले कर्म किये जाते हैं उनसे स्वसम्बन्धी गुण की वृद्धि होती है और अन्य गुण मध्य या हीन दशा में पहुँच जाते हैं। कर्मों से होने वाले इस गुण-तारतम्य से चार प्रकार के स्वभाव बने हैं जिनका साक्षात्कार प्राचीन समय में सर्वज्ञ महर्षियों ने किया था। इनका उल्लेख भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के १८ वें अध्याय में किया है। इनके अनुसार ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये ४ जातियां बनी हैं। प्राचीन महर्षि अपरोक्षज्ञानी थे। प्रत्येक मनुष्य-बालक की आरम्भिक अविकसित दशा में भी उसके गुण-

कर्म-स्वभावों का साक्षात्कार कर लेते थे और तदनुकूल उसकी जाति मानकर उसको वैसा बना देते थे, ऐसे समय में एक ही पिता के पुत्रों में कुछ ब्राह्मण और कुछ अन्य वर्ण के बने। कश्यप के पुत्र आवत्सार और असित ब्राह्मण थे, परन्तु उनका भाई विउस्वान् क्षत्रिय था। मनु के दो पौत्रों का नाम नाभाग था, जिनमें एक क्षत्रिय और दूसरा वैश्य था, जिसका पुत्र भलन्दन हुआ जो वैश्यों के प्रवरों में है। विश्वामित्र ने अपने पवित्र कर्मों से ब्राह्मण-स्वभाव प्राप्त किया था। अपरोक्षदर्शी महर्षियों को अपने दिव्य ज्ञान से जब उसका साक्षात्कार हो गया तो उन्होंने विश्वामित्र को ब्राह्मण मान लिया था। ब्राह्मणों क प्रवरों में जो अम्बरीष, यौवनाश्व आदि क्षत्रियों के नाम उपलब्ध होते हैं इसका भी कारण उपर्युक्त ही है।

जब उपर्युक्त गुण-कर्म-स्वभावों को पहिचानने की दिव्य ज्ञान शक्ति का ब्राह्मणों में ह्रास हो गया और बाल्यावस्था में इनका विकास न होने से चर्मचक्षुओं से इनका ज्ञान प्राप्त करना असम्भव हो गया एवम् संस्कार करते समय वर्णोचित भिन्न २ अंगों के अनुष्ठानों में आपत्ति होने लगी तो ब्राह्मणादि जातियों की पहिचान के लिये धर्मशास्त्र में यह नियम बना कि मनुष्य अपनी विवाहित सवर्ण स्त्री में जिसे उत्पन्न करे वह सन्तान अपनी पिता की जाति का होता है। वह अपने वर्ण क लिये विहित आवश्यक कर्म अपने जीवन में करता रहे तो इसकी जाति सुरक्षित रहती है। ये जाति संरक्षक कर्म गीता के १८ वें अध्याय में बताये हैं। यहां पहले म ब्राह्मण जाति का विचार प्रस्तुत है, इसलिये केवल इसके संरक्षक कर्मों का यहाँ उल्लेख किया जाता है —

मण्डल-विभाग

पूर्वोक्त ४ मंडलो में से मेवाड़-मंडल सबसे बड़ा है, जिसमें ग्राम संख्या ११२ गृह संख्या ७७६ और जन-संख्या सन् १६४१ की जनगणना के अनुसार २६८७ कही जाती है। इस मंडल में मेवाड़, वागड़, काँठल और अठाने से कंजार्डा चौकड़ी तक का मालवे का हिस्सा संमिलित है। इस मंडल के मुखिया श्रीकृष्णजी पाठक हैं जिनका निवास उदयपुर में है। इनका परिचय 'विशिष्ट वंश परिचय' में पहले निर्दिष्ट कर दिया गया है।

झालावाड़-मंडल में ग्राम संख्या ४२ और गृह-संख्या ११७ है। मेवाड़-मंडल के समान इस मंडल के कोई पृथक् मुखिया नियत नहीं है। छावनी के शास्त्री मथुरालालजी, कृष्णलालजी इस मंडल में प्रतिष्ठित जागीरदार हैं। इनके पूर्वपुरुष शास्त्री नन्दरामजी को उदयपुर के महाराणा भीमसिंहजी ने गांव छाजवी और झालावाड़ के महाराजा मदनसिंहजी ने गांव हाडोता जागीर में दिया था। इनके अतिरिक्त वड़गांव, नाई और मेलाणा में भी छोटी २ जागीरें मिली हैं। झालावाड़ के नरेश द्वितीय जालिमसिंह तक इस घरकी परिस्थिति बहुत अच्छी रही। इस घर से कई जाति-संमेलन हुए हैं। इस में अबतक जितने विद्वान् हुए हैं उतने आमेटा जाति के किसी अन्य वंश में नहीं हुए। शास्त्री लल्लूजी शिवरामजी प्रसिद्ध नागर विद्वान् निर्भयराम भट्टजी के शिष्य थे और बहुत समय तक नाथद्वारा में अधिकारी पद पर रहे थे। निर्भयराम भट्टजी ने स्वयं के संतति न होने से अपने सेव्य स्वरूप मदनमोहनजी और



श्रीमद्विद्वद्वृन्दशिरोमणि जगद्गुरु-श्रीरामानुज
भगवत्पादीय स्वामीजी श्रीहरिरामाचार्यजी
महाराज, लाम्बा निवासी
प्रमुख, मरुदेशीय आमेटा मण्डल, अधिष्ठाता
श्रीराममाहात्म्य-मन्दिर, रनेडा (मेवाड)

अपना ग्रन्थ संग्रह शास्त्री लल्लुजी को दिया था जो आपके वंशधर शास्त्री कृष्णलालजी के पास है। शास्त्री कृष्णलालजी इंग्लिश और संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं।

मालवा मंडल में ग्राम ६८ घर २३० और जन-संख्या ६०० से कुछ ऊपर है। इस मंडल का निश्चित विवरण नहीं मिला है। इस मंडल में किसी ने ग्राम संख्या ६६ और किसी ने ६८ बताई है। जाति के घर १६१ से २३० तक भिन्न २ संख्याओं में बताये हैं। ग्रामचार गोत्रों का विवरण भी अब तक पूरा नहीं आया है। इस मंडल में अभी एक जातीय सभा स्थापित हुई है, जिसमें पं० वैजनाथप्रसादजी शुजालपुर, रामचरण द्वारकाप्रसादजी आकोदिया मंडी आदि कार्यकर्ता हैं। इस मंडल में पाण्डेय और भट्ट मुखिया हैं। पाण्डेयों में फोजदार भागीरथजी, ज्योतिषी गणेशदत्तजी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। शुजालपुर के जाति-बन्धुओं की परिस्थिति अच्छी है।

मारवाड़-मंडल में ग्राम संख्या ८० और गृह-संख्या २०७ हैं। इस मंडल में कोई मुखिया नियत नहीं है, परन्तु मोहरा के जागीरदार विशेष प्रतिष्ठित हैं। इनका वर्णन विशिष्ट-वंश में आ चुका है। इस मंडल के कुछ लोग जोधपुर, जैसलमेर परबतसर, गोमलपुर, मेड़ता आदि में भी हैं जिनका इस मंडल ने परित्याग कर दिया है। सुना जाता है कि इनकी संख्या ६० के करीब है। इनमें से कुछ घरों का विवरण वैद्य जसराजजी, जोधपुर ने लिख कर भेजा था, जिसमें कुछ लोगों का गोत्र उपमन्यु और कुछ का लोमन्यस् लिखा था। आमेटों के रावजी की पुस्तक में ये गोत्र नहीं हैं और

जसराजजी से पूछा तो योग्य उत्तर नहीं दिया, अतएव इनको प्रस्तुत इतिहास में स्थान नहीं दिया गया है।

इन चारों मंडलों में मिल कर आमेटा जाति के १३३४ घर हैं। मारवाड़-मंडल में से ६० के करीब पृथक् हो गये हैं उनका भी अनुसंधान कर लिया जाय तो वृद्धों के इस कथन का अधिक अंश में समर्थन हो जाता है कि संपूर्ण भारतवर्ष में आमेटा जाति के १५०० घर हैं। इनके गोत्रों के ग्रामवार विवरण पाठक अब आगे देखें। मारवाड़ और मालवा के चान्द्रायणों का मेवाड़ के चन्द्रात्रेयों से कुल-साम्य मालूम नहीं होता है, इसलिये गोत्र चान्द्रायण लिखा गया है।

अन्तर्मण्डल

उपर्युक्त ४ मंडलों में मेवाड़-मंडल बहुत विशाल है। अतएव इसके कई अन्तर्मण्डल बन गये हैं। इन अन्तर्मण्डलों को जातीय भाषा में 'चौखला' कहते हैं। इनका विवरण निम्नलिखित है—

१—उदयपुर का चौखला:—गांव ४, घर ७०, जन-संख्या ३०० है।

२—गादोली का चौखला:—गांव १६, घर ११६, जन-संख्या ४७५ है।

३—वोराट का चौखला:—गांव १३, घर १११, जन-संख्या ४४४ है।

४—सेरा का चौखला:—गांव १३, घर ४५, जन-संख्या १८० है।

५—फलवा का चौखला —गाव ११, घर ८१, जन-सख्या ३२४ है।

६—भींडर का चोखला —गाव ३ या ६, घर २८ या ४० जन सख्या ११२ या १२८ है।

७—कुरावड का चोखला —गाव ५, घर ३७, जन-संख्या १८० है।

८—बागड का चोखला —गाव ५, घर २६, जन-सख्या १०४ है।

६—सलुम्बर का चोखला —गाव ५ घर २३, जन सख्या ६२ है।

१०—जोदगास का चौखला —गाव ७, घर ४०, जन-सख्या १६० है।

११—देगाद का चोखला —गाव १४, घर ७६, जन-सख्या ३०४ है।

१२—प्रतापगढ का चौखला —गाव ६, घर ३८, जन-सख्या १३६ है।

१३—कणजार्दा चौरसी का चौखला —

———

मण्डलों की गृह-संख्या

१-मेवाड़ मण्डल

प्रान्त मेवाड़

गृह-संख्या	गोत्र, अवटंक
	उदयपुर स्टेट
(१)	उदयपुर
१	कश्यप, पाठक
३	कश्यप, जोशी
१	कश्यप, उपाध्याय
४	भारद्वाज, भट्ट
३	चन्द्रात्रेय, जोशी
१	चन्द्रात्रेय, व्यास
७	कौंडिन्य, त्रिवेदी
५	वत्स, जोशी
७	वत्स, व्यास
१	वत्स, उपाध्याय
५	गौतम, उपाध्याय
१	वसिष्ठ, आचार्य
योग ३९	

गृह-संख्या	गोत्र, अवटंक
(२)	तीतरडी
१८	गौतम, उपाध्याय
१	वत्स गरड़ा
योग १९	
(३)	नाई
७	चन्द्रात्रेय, व्यास
१	वत्स, जोशी
योग ८	
(४)	चीकलवास
१	चन्द्रात्रेय, व्यास
(५)	गादोली
३२	भारद्वाज, भट्ट
५	कौण्डिन्य, त्रिवेदी
१	कश्यप, उपाध्याय
योग ३८	

गृह-संख्या	गोत्र, अवटक
(६) सागवा	
	७ शाण्डिल्य, द्विवेदी
(७) आसणा	
	२ कश्यप, उपाध्याय
(८) बीजणवास	
	१ कौण्डिन्य, त्रिवेदी
(९) करणपुर	
	१४ चन्द्रात्रेय, व्यास
(१०) फाचर	
	३ वत्स, जोशी
(११) नेडी	
	७ भारद्वाज, उपाध्याय
(१२) ऊटाला	
	११ वत्स, उपाध्याय
	१ कश्यप, उपाध्याय
योग १२	
(१३) नाथद्वारा	
	४ वत्स, उपाध्याय
(१४) भटेवर	
	९ कश्यप, उपाध्याय
	१ कौण्डिन्य, त्रिवेदी
	१ चन्द्रात्रेय, व्यास
योग ६	

गृह-संख्या	गोत्र, अवटक
(१५) वारता	
	६ कौण्डिन्य, त्रिवेदी
(१६) धमाणिया	
	२ कौण्डिन्य, त्रिवेदी
(१७) दूदाणया	
	१ चन्द्रात्रेय, व्यास
(१८) हणटाली	
	३ कौण्डिन्य, त्रिवेदी
	२ कश्यप, उपाध्याय
	१ चन्द्रात्रेय, व्यास
योग ६	
(१९) नवाखिया	
	१३ वत्स, जोशी
(२०) मेणार	
	७ वत्स, भट्ट
(२१) खेरोदा	
	२ वत्स, जोशी
(२२) भींडर	
	६ गौतम, भट्ट
	१ भारद्वाज, द्विवेदी
	३ भारद्वाज, भट्ट
	१ भारद्वाज, ज्यौतिषी
	४ कश्यप, उपाध्याय

गृह-संख्या गोत्र, अवटंक

२ कश्यप, जोशी
२ चन्द्रात्रेय, व्यास
१ चन्द्रात्रेय, जोशी

योग २०

(२३) कूण
२ गौतम, भट्ट

(२४) कानोड़
१ वत्स, जोशी

(२५) नंगावली
१ चन्द्रात्रेय, जोशी
१ कश्यप, जोशी

योग २

(२६) भादसोडा
२ भारद्वाज, भट्ट

(२७) बीरोली
१ वसिष्ठ आचार्य

(२८) कुरावड़
८ वत्स, गरड़ा
१६ वत्स, जोशी
१ वत्स, व्यास
८ कश्यप, उपाध्याय
१ कश्यप, जोशी

गृह-संख्या गोत्र, अवटंक

२ चन्द्रात्रेय, जोशी
२ चन्द्रात्रेय, व्यास
१ भारद्वाज, भट्ट

योग ३९

(२९) वली
१ वत्स, जोशी
१ चन्द्रात्रेय, व्यास

योग २

(३०) वूडल
१ चन्द्रात्रेय, व्यास

(३१) लालपुरा
१ कश्यप, उपाध्याय

(३२) चायंदा
१ कौण्डिन्य, त्रिवेदी
१ चन्द्रात्रेय, जोशी

योग २

(३३) गुड़ली
४ वत्स, जोशी

(३४) सलुम्बर
४ भारद्वाज, भट्ट
४ चन्द्रात्रेय जोशी

गृह सख्या	गोत्र, अवटक
१	चन्द्रात्रेय, व्यास
२	गौतम, भट्ट
२	वत्स, जोशी

योग १३

(३५) थाणा

१	कश्यप, जोशी

(३६) जयसमुद्र

३	चन्द्रात्रेय, जोशी

(३७) ऋषभदेवजी

२	वसिष्ठ, आचार्य

(३८) सेमारी

४	चन्द्रात्रेय, भट्ट

(३९) चामुण्ड

१	कश्यप, जोशी

(४०) पारसोला

१	भारद्वाज, द्विवेदी

(४१) देलवाडा

१४	कश्यप, जोशी
२	चन्द्रात्रेय, व्यास
३	वसिष्ठ, आचार्य

योग १९

(४२) कुम्भलगढ

२	चन्द्रात्रेय, व्यास

गृह-सख्या	गोत्र, अवटक

(४३) हमेरकापाल

१	

(४४) आतरी

८	शाण्डिल्य, द्विवेदी
१	कश्यप, उपाध्याय

योग ९

(४५) थारा

१३	चन्द्रात्रेय, व्यास

(४६) वागड

६	कश्यप उपाध्याय

(४७) नीकोड

२	चन्द्रात्रेय, व्यास

(४८) अलादरा

१	भारद्वाज, भट्ट
१	कश्यप, जोशी

योग २

(४९) मेणा

१	वसिष्ठ, आचार्य

(५०) पलासमा

१	चन्द्रात्रेय, व्यास
१	भारद्वाज, भट्ट

योग २

गृह-संख्या गोत्र, अवटंक

(५१) कलवाणा
४ वत्स, उपाध्याय
१ भारद्वाज, भट्ट

योग ५

(५२) पुनावाली
१ भारद्वाज, भट्ट
(५३) कड़दा
३ भारद्वाज, भट्ट
(५४) पालछ
१ भारद्वाज, भट्ट
(५५) गोगून्दा
३ कौण्डिन्य, त्रिवेदी
(५६) हुकार
१० कश्यप, उपाध्याय
(५७) आतमा
६ कश्यप, उपाध्याय
(५८) वीरवास
२१ चन्द्रात्रेय, त्रिवेदी
(५९)— लोडियाणा
७ आंगिरस, त्रिवेदी
(६०) सरदारगढ़
६ वसिष्ठ, आचार्य
(६१) भोलमगरा
१ कश्यप, उपाध्याय

गृह-संख्या गोत्र, अवटंक

(६२) खांखलास
८ वसिष्ठ, आचार्य
१ कश्यप, जोशी

योग ६

(६३) रेलमगरा
६ कश्यप, जोशी
(६४) कारोल्या
१७ चन्द्रात्रेय, जोशी
९ कश्यप, उपाध्याय

योग २६

(६५) धांयला
७ आंगिरस, त्रिवेदी
(६६) धानीण
८ कश्यप, उपाध्याय
(६७) मोजावतों का गुढ़ा
१ कश्यप, उपाध्याय
(६८) अमल्यार
१ कश्यप, उपाध्याय
(६९) जोदणास
१२ भारद्वाज, भट्ट
३ कौण्डिन्य, त्रिवेदी
४ चन्द्रात्रेय व्यास

योग २०

गृह-संख्या गोत्र, अवटंक

(७०) हुरडा
६ वसिष्ठ, आचार्य

(७१) तलारी
५ कश्यप, जोशी
१ वसिष्ठ, आचार्य

योग ६

(७२) करेडा
३ कौण्डिन्य, त्रिवेदी

(७३) कालसा कालेड़ा
१ चन्द्रात्रेय, व्यास

(७४) धनोरा
७ आलम्यायान, जोशी

(७५) साटोला
५ कश्यप, जोशी

(७६) वबोरी
१३ चन्द्रात्रेय, व्यास

(७७) वधोरा
१ गौतम, भट्ट

(७८) सादड़ी
७ चन्द्रात्रेय, व्यास
१ कौण्डिन्य, त्रिवेदी

योग ८

गृह-संख्या गोत्र, अवटंक

(७९) ढाकणी
१ चन्द्रात्रेय, व्यास

(८०) भींचोर
२ कौण्डिन्य, त्रिवेदी

(८१) तेजपुर
२ चन्द्रात्रेय, व्यास
१ भरद्वाज, भट्ट
१ शाण्डिल्य, त्रिवेदी

योग ४

(८२) नन्दवास
६ कश्यप, जोशी
१ वशिष्ठ, आचार्य

योग ७

(८३) आमलदा
१५ चन्द्रात्रेय, व्यास

(८४) अलीमपुरा
२ चन्द्रात्रेय, व्यास

(८५) वेग
३ आलम्यायन, जोशी

(८६) मडावदा
१ भारद्वाज, भट्ट
१ चन्द्रात्रेय, व्यास

योग २

गृह-संख्या	गोत्र, अवटंक
(८७)	धांगड़मऊ
१	कौरिडन्य, त्रिवेदी
(८८)	खुमाणगंज
१	भारद्वाज, भट्ट
(८९)	उथेण वड़ी
१६	भारद्वाज, द्विवेदी
२	चन्द्रात्रेय, व्यास
योग	१८
(९०)	उथेण छोटी
१०	शारिडल्य, त्रिवेदी
(९१)	पलसिया
११	चन्द्रात्रेय, व्यास
१	भरद्वाज, भट्ट
योग	१२
(९२)	वनेडिया
१	कश्यप, जोशी
(९३)	भैंसरोड़गढ़
६	गौतम, भट्ट
(९४)	सलोदा
१	वसिष्ठ, आचार्य

प्रतापगढ़ स्टेट

गृह-संख्या	गोत्र, अवटंक
(९५)	देवलिया
६	कश्यप, जोशी
६	भरद्वाज, द्विवेदी
१	चन्द्रात्रेय, जोशी
१	चन्द्रात्रेय, व्यास
२	कश्यप, भट्ट
१	भारद्वाज, भट्ट
४	कौरिडन्य, त्रिवेदी
योग	२१
(९६)	प्रतापगढ़
३	कश्यप, उपाध्याय
१	कश्यप, जोशी
४	चन्द्रात्रेय, त्रिवेदी
२	वसिष्ठ, आचार्य
१	गौतम, भट्ट
१	भारद्वाज, भट्ट
१	आलम्बायन, जोशी
१	आंगिरस, त्रिवेदी
योग	१४
(९७)	सुहागपुरा
२	कश्यप, गामोठ
१	कश्यप, वोहरा
१	कश्यप, उपाध्याय
योग	४

गृह-संख्या गोत्र, अवटक

(९८) कल्लोस्या
२ चन्द्रात्रेय, व्यास

(९९) अरणोद
३ गोतम, भट्ट

(१००) झातला
१ आलम्यायन भट्ट
१ गौतम, भट्ट
१ पराशर, पराशरी
१ कश्यप, उपाध्याय

योग ४

(१०१) फलजा (टोंक)
१६ चन्द्रात्रेय, जोशी
४ वत्स, जोशी
८ गौतम, भट्ट
६ वसिष्ठ, आचार्य
२ कश्यप, जोशी
४ भारद्वाज, भट्ट
१ गार्ग्य,

योग ४१

(१०२) निंबाहेड़ा (टोंक)
१ गौतम, भट्ट

गृह-संख्या गोत्र, अवटक

(१०३) शाहपुरा (स्टेट)
१ चन्द्रात्रेय, व्यास

(१०४) नचाव (प्रा अजमेर)
२ कौण्डिन्य, त्रिवेदी

ग्वालियर स्टेट

(१०५) अठाला
४ चन्द्रात्रेय, भट्ट
१ कौण्डिन्य, त्रिवेदी

योग ५

(१०६) सुवाखेड़ा
४ कश्यप, जोशी
१ कौण्डिन्य, त्रिवेदी
१ चन्द्रात्रेय, जोशी

योग ६

इन्दोर स्टेट

(१०७) कजार्डो
८ कश्यप, जोशी
५ चन्द्रात्रेय, व्यास
५ कौण्डिन्य, त्रिवेदी
३ वसिष्ठ, आचार्य

योग २१

गृह-संख्या	गोत्र, अवटंक
(१०८) चौकड़ी	
१	चन्द्रात्रेय, व्यास
(१०६) गंधाई	
३	पाराशर
प्रान्त वागड	
(११०) वागीधोरा	
७	कश्यप, जोशी
३	चन्द्रात्रेय, व्यास
१	चन्द्रात्रेय, भट्ट
१	वत्स, जोशी
योग १२	

गृह-संख्या	गोत्र, अवटंक
(१११) लोहारिया	
८	भारद्वाज, द्विवेदी
५	भारद्वाज, भट्ट
योग १३	
(११२) वणकोडा	
२	भारद्वाज, द्विवेदी
१	वत्स, जोशी
योग ३	
(११३) ठाकरडा	
	भारद्वाज, द्विवेदी

२—झालावाड़-मण्डल

गृह-संख्या	गोत्र, अवटंक
देवर (१)	
३	वत्स, जोशी
(२) सालरी	
५	चन्द्रात्रेय, जोशी
(३) सोयली	
१	वत्स, जोशी

गृह-संख्या	गोत्र, अवटंक
(४) बोरवन्दा	
१	गौतम, भट्ट
२	वसिष्ठ, आचार्य
योग ३	
ग्वालियर स्टेट	
(५) गुराड्या	
३	कश्यप, जोशी



पं० कृष्णलालजी शास्त्री, काव्यतीर्थ,

प्रमुख, झालावाड मंडल, ब्रजनगर (झालावाड)

गृह-संख्या गोत्र, अवटक

(६) डूंगर गांव (इ० स्टेट)
१ भारद्वाज, द्विवेदी
१ चन्द्रात्रेय, व्यास
१ कौण्डिन्य, त्रिवेदी

योग ३

(७) कुलमीखेड़ा
१ वसिष्ठ, आचार्य

(८) खोजाखेड़ी
२ चन्द्रात्रेय, व्यास
१ वसिष्ठ, आचार्य

योग ३

(९) हिम्मतगढ़
२ चन्द्रात्रेय, व्यास
३ गौतम, भट्ट
१ वत्स, जोशी
२ कश्यप, जोशी

योग ८

(१०) आखामोरी का खेड़ा
२ गौतम, उपाध्याय

(११) हेमड़ी
१ गौतम, भट्ट

(१२) पगारियो
१ चन्द्रात्रेय, जोशी

८

गृह-संख्या गोत्र, अवटक

(१३) आवरी
१ गौतम, भट्ट

(१४) कनवाड़ी
२ वसिष्ठ, आचार्य

(१५) पीपल्या
१ भारद्वाज, भट्ट

(१६) पाटन की छावनी
१ चन्द्रात्रेय, व्यास

(१७) गामड़ीखेड़ा
१ वसिष्ठ, आचार्य

(१८) खानपुरा (कोटा)
२ कश्यप, जोशी
१ वत्स, जोशी

योग ३

(१९) जगपुरा
१ कश्यप, जोशी

(२०) सुन्दारा
३ भारद्वाज, भट्ट
२ कश्यप, जोशी
२ चन्द्रात्रेय, व्यास

योग ७

(२१) भानपुरा (इ० स्टेट)
३ वसिष्ठ, भट्ट

गृह-संख्या गोत्र, अवटंक

(२२) हरणावदा (ग्वा० स्टेट)
१ आचार्य, वसिष्ठ

(२३) सातलखेड़ी
२ कश्यप, जोशी
१ चन्द्रात्रेय, जोशी

(२४) सुजानपुरा
६ गौतम, भट्ट
२ भारद्वाज, द्विवेदी
१ कौण्डिन्य, त्रिवेदी

योग ६

(२५) मालासेरी
१ चन्द्रात्रेय, व्यास

(२६) अणसर
१ वसिष्ठ, आचार्य

(२७) सेमरोल
५ भारद्वाज, भट्ट

(२८) राण्यो
१ भारद्वाज, भट्ट

(२९) दाण्याखेड़ी
१ कौण्डिन्य, त्रिवेदी

(३०) डावला
२ कौण्डिन्य त्रिवेदी

(३१) मामखेड़ी
२ कौण्डिन्य, त्रिवेदी

गृह-संख्या गोत्र, अवटंक

(३२) हतोण्या
२ कौण्डिन्य, त्रिवेदी

(३३) गुनाई
३ पाराशर, पाराशरी

(३४) हताई
१ कौण्डिन्य, त्रिवेदी

(३५) आंकुली
४ चन्द्रात्रेय, व्यास

(३६) उज्जैन (ग्वालियर स्टेट)
१ वत्स, जोशी

(२७) गरोठ (इं० स्टेट)
१ चन्द्रात्रेय, जोशी

(३८) जौरापुर (इं० स्टेट)
३ चन्द्रात्रेय, जोशी
३ भारद्वाज, भट्ट
१ चन्द्रात्रेय, व्यास
२ कौण्डिन्य त्रिवेदी
१ कश्यप, जोशी
१ भारद्वाज, भट्ट

योग ११

(३९) चकाणी (कोटा स्टेट)
३ चन्द्रात्रेय, व्यास
१ कौण्डिन्य, वोहरा

योग ४

गृह-संख्या	गोत्र, अवटक
(४०) देवली (शाहजहाँपुर)	
२	कश्यप, पुरोहित
(४१) बाराही (शाहजहांपुर)	
४	वसिष्ठ, आचार्य
(४२) नौसान्या (शाहजहांपुर)	
१	गौतम, उपाध्याय
(४३) कछोट्या (खिलचीपुर)	
२	गौतम, उपाध्याय
१	वसिष्ठ, आचार्य
योग ३	

३—मालवा-मण्डल (शुजालपुर-मण्डल)

गृह-संख्या	गोत्र, अवटक
(१) पोलायमखुर्द (शाहजहाँपुर)	
१	वत्स भट्ट
१६	शेष
योग १७	
(२) जरखो	
१	वत्स, जोशी
(३) जलोद (धार)	
१	भारद्वाज, द्विवेदी
(४) केसूर	
१	चान्द्रायण, भट्ट
(५) कानवन (धार)	
१	भारद्वाज, गार्गी
१	कश्यप जोशी
१	शेष
योग ३	
(६) वरणासा	
१	भारद्वाज, द्विवेदी
(७) बरेठा	
२	कश्यप, जोशी
(८) आकोदिया मण्डी	
५	गौतम, मानावत
१	शेष
योग ६	

गृह-संख्या गोत्र, अवटंक

(९) सारंगपुर (ग्वा०)

२ वसिष्ठ, पाण्डेय

५ शेष

योग ७

(१०) नरसिंहगढ़

३ कश्यप, जोशी

(११) शुजालपुर

१२ चान्द्रायण, भट्ट

१० भारद्वाज, भट्ट और द्विवेदी

४ गौतम, भट्ट

३ कश्यप, जोशी और उपाध्याय

१ वत्स, जोशी

योग ३०

(१२) शाहजहांपुर

१ वसिष्ठ, पाण्डेय

३ भारद्वाज, द्विवेदी

योग ४

(१३) फुलोन

२ ... ...

(१४) खेड़ीनगर

२ ... ...

गृह-संख्या गोत्र, अवटंक

(१५) अमलावती

२ ... ...

(१६) कड़वाला

२ ... ...

(१७) केवड़ा खेड़ी

१ ... ...

(१८) बारवा

५ ... ...

(१९) कुड़लासा

१ ... ...

(२०) इकलेरा बड़ा

३ भारद्वाज, द्विवेदी

(२१) नवाखेड़ा

२ भारद्वाज, द्विवेदी

(२२) खोकरा

२ ... ...

(२३) लसुड़िया माताजी

१ ... ...

(२४) ढावला (धार)

२ ... ...

(२५) रामगढ़ (राजगढ़)

२ कश्यप, जोशी

१ शेष

योग ३

गृह-संख्या	गोत्र, प्रवटक
(२६) जामनेर	
१	कश्यप, जोशी
(२७) सिलादो	
१	
(२८) हडलाय	
१	
(२६) मोलटा	
३	
(३०) सकेड़ी	
५	
(३१) मकोड़ी	
३	
(३२) कामल्यानेड़ी	
१	
(३३) सिमरोल	
४	
(३४) मन्नायदा	
२	
(३५) निटरखी	
१	
(३६) धोरखाखी	
१	
(३७) पलसायद	
१	
(३८) केथलाय	
१	
(३६) भैंसरोद	
३	
(४०) चोलाई	
१	
(४१) पीपलोदा	
१	
(४२) यानूखेड़ी	
१	
(४३) निखड़ोद	
५	
(४४) भरनायदा	
२	
(४५) तराना	
५	
(४६) धोसनखेड़ा	
१	
(४७) जमोनिया	
२	
(४८) चारणवार	
८	

गृह-संख्या	गोत्र, अवटंक
(४६) डोकरगांव	
१	चान्द्रायण
१	शेष
योग २	
(५०) कलमी	
१	चान्द्रायण
(५१) खाचरोद	
२	गौतम, भट्ट
४	शेष
योग ६	
(५२) नलखेड़ा	
१	वसिष्ठ
(५३) केसूर	
१	चान्द्रायण, भट्ट
(५४) गोलूवा	
१	... .
(५५) पलवाड़ा (धार)	
१	वत्स, जोशी
१	चान्द्रायण, उपाध्याय
३	शेष
योग ५	
(५६) मनासा	
२	... ...

गृह-संख्या	गोत्र, अवटंक
(५७) बामनदा	
१	चान्द्रायण, भट्ट
(५८) खोरिया	
१	... ...
(५९) लसूंडालिया	
१	... ...
(६०) जावर	
५	... ...
(६१) कुरावर	
१	... ...
(६२) राजगढ़	
१	... ...
(६३) उज्जैन	
५	... ...
(६४) कालापानीपनमण्डी (ग्वालियर)	
१	... ...
(६५) पोलाय	
३	वसिष्ठ
१७	शेष
योग २०	
(६६) आनन्द गांव	
३	गौतम
३	चन्द्रायण
योग ६	

गृह सख्या गोत्र, अवटक

(६७) आकोटिया गाव
६

(६८) जंवूसर (भोपाल)
४ गौतम, मुखिया

गृह-सख्या गोत्र, अवटक

(६६) छड़ावद
२

४—मारवाड़-मण्डल

गृह-सख्या गोत्र, अवटक

(१) लारा
६ चान्द्रायण, त्रिवेदीभट्ट

(२) भावी
४ कश्यप, उपाध्याय
३ कौशिक, जोशी

योग ७

(४) जयती
३ कौशिक जोशी

(५) छाडवास
१ कश्यप, उपाध्याय

(६) वीजपुर
६ कौशिक, जोशी

(७) सरपरा
१ कौशिक, जोशी

गृह-सख्या गोत्र, अवटक

(८) वीसलपुर
२ कौशिक, जोशी

(६) जसपाली
३ वसिष्ठ, आचार्य
१ शाण्डिल्य, पुरोहित
१ कौण्डिन्य, त्रिवेदी

योग ५

(१०) बुचकला
३ वसिष्ठ, आचार्य

(११) वणार
१ गार्ग्य, कटार्या

(१२) भेसाणा
२ कौशिक, जोशी

(१३) मामावस
१ कौशिक, जोशी

गृह-संख्या	गोत्र, अवटंक
२	आंगिरस, पल्लीवाल
१	वत्स, वोहरा

योग ४

(१४) सियाट

२	वत्स, वोहरा
१	भारद्वाज, भरडारी

योग ३

(१५) पाचुरडा

१	आंगिरस, पल्लीवाल

(१६) वगड़ी

३	भारद्वाज, भरडारी

(१७) उदेका

४	कौरिडन्य, व्यास
२	शारिडल्य, शिलोड़ा
३	आंगिरस, पल्लीवाल

योग ८

(१९) मोहरा

५	कौशिक, जोशी

(२०) ककिन्द

१	गौतम, पारीख
२	शारिडल्य, शिलोड़ा

योग ३

गृह-संख्या	गोत्र, अवटंक

(२१) मुराडावा

२	पराशर, कराठ

(२२) रायपुर

९	कौशिक, जोशी
२	वत्स, वोहरा
२	कश्यप, उपाध्याय
१	आंगिरस, पल्लीवाल
१	गौतम, पारीख

योग १५

(२३) वीजोवा

६	वत्स, वोहरा
५	आलम्बायन, उपाध्याय

योग ११

(२४) रावतमाला

१	वत्स, वोहरा
१	आंगिरस, पल्लीवाल

योग २

(२५) लोटियाणा

१	कौरिडन्य, त्रिवेदी

(२६) नीमेहड़ा

५	वसिष्ठ, आचार्य

गृह-संख्या गोत्र, अवटंक

(२७) स्यावा

१ वत्स, जोशी

(२८) घोराव

१ आंगिरस, पल्लीवाल

(२९) श्रीनाल (हाड़ोती)

२ शाण्डिल्य, वोहरा

(३०) जावरा (जावरा स्टेट)

१ कौण्डिन्य, त्रिवेदी

(३१) बखतगढ

१ गार्ग्य, कटारिया

(३२) लाडिया

१० कश्यप, उपाध्याय

३ कौण्डिन्य, व्यास

४ आंगिरस, पल्लीवाल

४ शाण्डिल्य, शिलोड़ा

१ वसिष्ठ, आचार्य

१ गौतम, पारीख

१ गार्ग्य, कटारिया

२ कौशिक, जोशी

योग २६

प्रान्त पूना

(३३) मचर

२ गार्ग्य, कटारिया

गृह संख्या गोत्र, अवटंक

१ चान्द्रायण, त्रिवेदी भट्ट

१ आंगिरस, पल्लीवाल

योग ४

(३४) खेड

१ कश्यप, उपाध्याय

(३५) नारायण गांव

१ गार्ग्य, कटारिया

१ आंगिरस, पल्लीवाल

योग २

(३६) वेला

१ वत्स, वोहरा

(३७) कारेगाव

२ कौण्डिन्य, त्रिवेदी

(३८) कानगाव

१ चान्द्रायण, त्रिवेदी भट्ट

(३९) आलेगांव

२ वसिष्ठ, आचार्य

(४०) म्हावरा

१ वसिष्ठ, आचार्य

(४१) आवला

१ कौशिक, जोशी

(४२) मांडवगण

१ कश्यप उपाध्याय

गृह-संख्या गोत्र, अवटंक

१ वसिष्ठ, आचार्य
१ वत्स, वोहरा

योग ३

(४३) वारामती
२ आंगिरस, पल्लीवाल

(४४) मन्द्रारा
१ चान्द्रायण, त्रिवेदी भट्ट

(४५) ढाकाला
१ कौशिक, जोशी
१ कौण्डिन्य त्रिवेदी

योग २

(४६) पूना
१ चान्द्रायण, त्रिवेदी भट्ट

नगर प्रान्त

(४७) आवलकोटी
२ शाण्डिल्य, पुष्करणा पुरोहित
१ पाराशर, करट
१ वसिष्ठ, आचार्य
१ कौशिक, जोशी

योग ५

गृह-संख्या गोत्र, अवटंक

(४८) पारनेर
१ आंगिरस, पल्लीवाल
१ कश्यप, उपाध्याय

योग २

(४९) सोंपा
१ वसिष्ठ, आचार्य
१ वत्स, वोहरा

योग २

(५०) मांडवगण (कतरावाद)
१ कौशिक, जोशी

(५१) नींमगांव
३ कश्यप, उपाध्याय

(५२) वोवर
१ वसिष्ठ, आचार्य

(५३) चेलमराडी
१ चान्द्रायण, त्रिवेदी भट्ट
१ कौण्डिन्य त्रिवेदी

योग २

(५४) काष्ठी
१ भारद्वाज, भण्डारी

(५५) टिमूरणी
१ कौण्डिन्य, त्रिवेदी

व्यक्तियों को इधर-उधर से बुला-बुलाकर अपना समाज बढ़ाने लगे। उस समय और मुख्यतः उन आपत्तियों के दिनों में परस्पर खान-पान में भेद-भाव तथा कन्याव्यवहार में रुकावट न होने के कारण घुल-मिल कर एक जाति बना लेने में कोई बाधा उपस्थित नहीं हुई। यह आने-जाने का अविच्छिन्न व्यवहार विक्रम संवत् १०८० से लेकर १५०० तक बराबर बना रहा। इस प्रकार जो लोग गुजरात छोड़ कर अन्यान्य स्थानों में जा बसे वे या तो पहले के गांव के नाम से या जाकर बसाये हुए गांव के नाम से अपनी जाति का नाम प्रसिद्ध करने लगे और कभी २ अपने वर्ग के प्रसिद्ध पुरुष के नाम को जातिनाम के साथ जोड़ कर कहने लगे। ऐसी ही जातियों में एक यह आमेटा जाति भी है।

बनेड़ा (प्रान्त मेवाड़) में रामानुज-संप्रदायीय राम-मंदिर है, जिसके महन्त एक प्रतिष्ठित विद्वान् हैं, जिनका नाम हरिरामाचार्यजी है। आपने आमेटा जाति की उत्पत्ति के विषय में कुछ श्लोक प्राचीन हस्त-लिखित मुझे दिये, जिनके आदि-अन्त में 'उवाच' 'इति श्री' आदि कुछ नहीं था, जिससे मैं यह नहीं जान सका कि ये कहां के हैं। आचार्यजी को भी इन के विषय में कुछ मालूम नहीं हुआ। इनके विषय में 'ननु न च' के विचार तो विद्वान् करते रहें, परन्तु आमेटा जाति की उत्पत्ति के विषय में बड़वाओं की पोथी में क्या है, यह मालूम करने के लिये श्लोक उपयोगी अवश्य हैं, इसलिये यहां उद्धृत किये जाते हैं—

श्रीविष्णोर्नाभिकमलाद् ब्रह्मा जातो जगत्पतिः।
तस्माच्च ब्रह्मणः पुत्रो मरीचिर्मनसोऽभवत्।

मरीचे कश्यप पुत्रस्तत्सुतावृतसत्यकौ ।
ऋतो वै सविता ज्ञेयस्तस्माद् वैवस्वत सुत ।
सत्यावतारो गुणवान् द्वितीयो बभूव पुत्र खलु कश्यपस्य ।
सत्यप्रियाऽलाल्यत इत्यतोऽय श्रीलाडनाम्ना जगति प्रसिद्ध ।
पण्णवत्यब्दसाहस्रीं श्रीलाटस्तप आचरत् ।
नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे समाधाय मनो हरौ ।
तप परप्रभावेण तुल्यतेजा रवेरभूत् ।
हरे प्रसादतो दिव्य प्रभावमधिजग्मिवान् ।
ततश्च सरयूतीरे साकेतस्य समीपत ।
भूय केनापि कामेन दुश्चर तप आचरत् ।
भास्करोदयवेलायामेकदा स महामना ।
नित्यकर्माण्यनुष्ठातु दर्भपुञ्ज समग्रहीत् ।
स तेन दर्भपुञ्जेन दिव्यप्रेरणया मुनि ।
तप प्रभावतश्चक्रे मुनिपुत्रास्त्रयोदश ।
तेषा नामानि गोत्राणि विभिन्नानि विधाय स ।
सर्गप्रवृत्तये सर्वानादिशत्तपता वर ।
नामानि तेषा गोत्राणा त्रयोदश पुराविद ।
आहुस्तानि निदिश्यन्ते तन्निबोध द्विजोत्तम ।
शाण्डिल्य-कौण्डिन्य-वसिष्ठ-कश्यपा-
श्चान्द्रायण कौशिकवत्सगौतमा ।
गार्ग्यो भरद्वाजपराशरौ चा-
लम्बायनश्चाङ्गिरसस्त्रयोदश ।